॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ संतप्रभावप्रारंभ ।

दोहा ।

मंगलयनकरुणायतन, सर्व कल्यान गुन-धाम ॥ मम मानससर हंसवत, रमन करहु सिय राम ॥ १ ॥ ॥ टीका ॥ नारायणकी प्राप्तिको द्वारा अरु सर्व साधनको कारण जो है सो सत्संगही है तातैं सतसंगमें मुमुक्षुकी प्रवृत्तिके लिये सत्पुरुषकी महिमा निरूपण करैहैं तहां प्रथम साधूकूं नमस्कारपूर्वक सत्संगकौं नारायणकी प्राप्तिके विषे अन्वय व्यतिरेक दिखावैहैं ॥ १ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ सज्जन पद रज वंदिकैं, कहूं सुजन गुनगान ॥ जिहिं मिल बिन हरि नामिलै, यह निश्चय करि

जान ॥ २ ॥ ॥ टीका ॥ उनसज्जनसूं मिलैंही हरि मिलैं ये अन्वय अरु न मिलेसूं नमिले ये व्यतिरेक पूर्वपक्ष । इहां सज्जनको कहा कामहै साधू बिनाही भक्तिज्ञानादिक साधनसूंही नारायणकी प्राप्ति होवैगी तहां कहैहैं कि, सत्यं ज्ञानादिक करि नारायणकी प्राप्ति होय परंतु पती विना पुत्रकी नाईं सतसंग बिना ज्ञानादिकही दुर्लभहै ताते सत्संगहै सोई साधन अरु फलको कारण यह निश्चयहीहै अब याही अर्थकूं दृष्टांत युक्ति करिकै दृढ करैहैं ॥ २ ॥ दोहा ॥

ज्योंजल सरिता सूं मिलै, मिलत सिंधुमें जाय ॥
सज्जन मिलि सतपंथ चलि, त्यूं हरि माय समाय ॥ ३ ॥

॥ टीका ॥ जैसे तूंबीको जल और स्थानमें डारयौ सो सिंधुमें मिलै नाहि अरु जो गंगामें डारयौ तो गंगाजलसूं मिलिकै जलकी राह चलिकै सो जल समुद्रकूं प्राप्त होतहै काहेतै

सरिता है सो समुद्रसूं मिलीहै अरु गंगामें डारयो जो पाषाण सो ऊपरसूंतो जलसूं मिल्यो परंतु सर्वथा न मिल्यो अरु जलकी राह न चल्यो ताते सिंधुसूं नाहिं मिल्योहै तैसे मुमुक्षु सज्जनसूं मिलिकै सत्पुरुषके मारग चलिकै नारायणकूं प्राप्त होतहै अरु खल जो है सो ऊपरसूं तो संतनमें मिलैहै परंतु सत्पुरुषकी राह नहीं चलैहै; तातैं नारायणकूं नहीं पावैहै ॥ ३ ॥ ऐसै अन्वय व्यतिरेक करिकै नारायणप्राप्तिको द्वार सतसंग कह्यो अब अपनी वाणीकी सफलताके लिये गीताका दैवीइत्यादि पांच श्लोकको अर्थ करिकै सत्पुरुषको निर्धार करैहैं ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ दुस्तर गुणमय रामकी, माया नदिको पूर ॥ रामरूप प्रापतभये, तिरे धन्य वे सूर ॥ ४ ॥ ॥ टीका ॥ भूम्यादि मनादि रूप करिके

अष्टधा भेदकूं पाई अरु सत्व रज तम गुणमयी ऐसी नारायणकी जो माया ता माया नदीको जाग्रदादि प्रपंच रूप जो पूरहै तापूरकूं मायाको अधिष्ठान जो रामजी वाका यथार्थ ज्ञान करिके जो तिरे वे जन जगतमें धन्यहैं ॥ ४ ॥ जब नारायणकूं पायकै नारायणकी मायाकूं तिरैहैं तब सबही नारायणकै शरण जायकै नारायणकी मायाकूं क्यूं नहीं तिरैहैं ॥ तहां दृष्टांत ॥ ॥ श्लोक ॥ ॥ नमांदुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यंते नराधमाः ॥ मायया-पहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ इति ॥ याश्लोक-काअर्थ करिकै समाधान करैहैं ॥ दोहा ॥ हरि मायानैं हरलियौ, हरिस्वरूपको ज्ञान ॥ अविवेकी पापी अधम, भजत न हरिकूं जान ॥ ५ ॥ ॥ टीक ॥ जासूं नारायणकी मायाने नारायणको ज्ञान हरलियोहै याहीसूं वे मूढहैं देहादि अरु पुत्रादिरूप प्रपंचके विषे अहंता ममतारूप मोहकूं

पावैंकहैं याहीसूं हिंसा अनृतादि स्वभावरूप आसुर भावकूं पावेहैं याहीते पापी अरु पापीहै ताहीसूं नरोंके मध्ये अधम ऐसे जे हैं वे हरिके शरणजायके हरिकूं जानिकरि हरिकों नहीं भजैं है ॥ ८ ॥ अब याके भावार्थकों कहैहैं ॥ दोहा ॥ रामरूप जाने बिना, वृत्ति वेग बह्योजात ॥ नेक-सँभारीनासकै, तद्रूपगोते खात ॥ ६ ॥ टीका ॥ नारायणकी मायाने जिनोंको ज्ञान लियोहै वे नारायणकों जानेबिना नारायणकी मायाको अंतःकरणका रजरूप जो पूर तामैं बहेजातहैं जैसे नदीकी धारामें पर्‍यो सो धाराकों अनु-सरैहै संभारि नहीं सकैहै तैसे मनकी वृत्तिके वेग-में जो पर्‍योहै सोभी अहं सुखी दुःखी ऐसे तद्रूप होयकै गोते खातहै संभारि नहीं सकैहैं ॥ ६ ॥ अब जे रामकों प्राप्त भये वे रामकी मायाकूं तरैहैं ऐसो कह्यो वाके भावार्थकों कहैहैं ॥

॥ दोहा ॥ ॥ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति यह, बुद्धि अवस्था तीन ॥ नदी तिरे वे मानिये, तट तुरीया स्थितिकीन ॥ ७ ॥ ॥ टीका ॥ जीवकी च्यार अवस्थाहैं तामें जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति ये तीन जो हैं सो उपाधिभूत बुद्धिकीहैं अपेक्षासूं चौथी अवस्था अरु या तीनकूं विवेककरि पृथक् करिकै स्वरूपस्थिति जो है सो तीनूंकी कही परंतु या नदीको परतीर रूप जो परमात्मा तासूं अभिन्नहै तातैं स्वरूपभूतहै याके विषे जिनने स्थिति करी वे जाग्रदादि अवस्थारूप मायानदीकूं तिरे मानिये ॥ ७ ॥ श्लोक गीताका ॥ ॥ चतुर्विधाभजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ॥ आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ ८ ॥ याकोअर्थ ॥ आर्त कहिये तस्कर व्याघ्रादि करिकै अभिभूत तत्त्व जानिवेकूं चाहतो ऐसो जो जिज्ञासु धनादि

अर्थकूं इच्छतो जो अर्थार्थी अरु नारायणको तत्त्वके जानतो जो ज्ञानी ये च्यारि प्रकारके पुण्यवान् जन जो हैं वे नारायणकूं भजैंहैं तब वे च्यारूं बराबर होवैंगे तहां विशेष कहैहैं ॥ ८ ॥ ॥ श्लोक ॥ ॥ तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्ति-र्विशिष्यते ॥ प्रियो हि ज्ञानिनोत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥ ९ ॥ ॥ याको अर्थ ॥ वे कहे जे च्यारि भक्त तिनूंके मध्ये तत्वबित् जो है सो सदा मेरे विषे समाहितचित्तहै क्योंकि जाकी एक मेरेही विषे भक्तिहै स्त्री पुत्रादिक विषे भक्ति विपरीत नहीं है क्योंकि मुझ विना और कोई भजिवे लायक पदार्थ यो नहीं देखैहै यांहीसूं उनते यो अधिकताकूं पावैहै फेरि ज्ञानीको मैं आत्माहूं तातैं ज्ञानीकूं मैं अत्यंत प्यारो हूं सो आत्मा प्रिय जगत्‌मैं प्रसिद्धहै ॥ पूर्वपक्ष ॥ तुम

सर्व प्राणीमात्रकै आत्माहो तासूं तुम सर्वकूं अत्यंत प्यारे क्यों नहीं तहां कहैहैं कि सत्यं यद्यपि मैं सर्वको आत्माहूं तथापि वे सर्व मोकूं आत्मरूप करिकै नहीं जानैहैं किंतु भिन्न करि मानैहैं ताते उनकूं मैं अत्यंत प्यारो नाहिं अरु जो ज्ञानीहै सो मेरो आत्माहै ताते मोकूं अत्यंत प्यारोहै ॥९॥ तब आर्तादि तीन भक्त हैं वे नारायणकूं प्यारे नाहिं तहां कहैहैं ॥ श्लोक ॥ उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ॥ आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥ १० ॥ याकोअर्थ ॥ ये तीनूं भक्त उत्कृष्टहैं मोकूं प्यारेहैं भक्त कौणकूं अप्यारो होयगो परंतु ज्ञानी मोकूं अत्यंत प्यारोहै इतनी विशेष सो क्यों के ज्ञानी है सो मेरा आत्माही है मोसूं अन्य नांहि यो मेरो निश्चय है जातैं यो ज्ञानी जो है सो मैं वासुदेवही हूं वासुदेवसूं मैं अन्य नाहीं ऐसै

समाहितचित्त भयो सतो पावने लायक परब्रह्म रूप उत्तमगति जो मैं ताकों पावनेकूं प्रवृत्योहै ताते सर्वोत्तम है इन च्यार श्लोकके अर्थको संग्रह करिकै एक दोहामै दिखावेहैं ॥ १० ॥ ॥ दोहा ॥ ज्ञानी भक्त गोविंदनै, च्यारिभक्तके माहिं ॥ श्रेष्ठयुक्त प्रियआतमा, इन सम दूजा नाहिं ॥ ११ ॥ याको अर्थ प्रगटहै ॥ ११ ॥ दोहा ॥ उत्तमभक्त प्रतिबिंबवत, जानहु रामसमान ॥ नामरूप सम्यक उहां, भासत कछुगुणभान ॥ १२ ॥ ॥ टीका ॥ जो गीतामें ज्ञानी भक्तकारि कह्यो सोई एकादशमें उत्तम भक्त करिकै कह्योहै वाकूं नारायणसम जानिये जैसे प्रतिबिंबके विषे बिंबको स्वरूप यथार्थ भासैहै अरु कछुक उपाधिका धर्मभी भासैहै तैसे उत्तमभक्तकै विषेही रामस्वरूप सम्यक्भासैहै अरु व्यवहार कालमें

कछुक उपाधिके गुणकोभी भान होतहै अथवा जैसे अग्निके प्रतिबिंबमैं अग्निको स्वरूप तो यथार्थ भासैहै अरु अग्निके गुण जे दाहक प्रकाशादि तामैं प्रकाशत्व जो है सो तो भासैहै सोभी कछूक भासैहै अरु दाहकत्व जो है सो नहीं भासैहै तैसे उत्तम भक्तके विषेहूं सच्चिदानंद रामको स्वरूपहै सो तो सम्यक् भासै है अरु ऐश्वर्यादि गुण जो हैं तामैं कोयक भासैहै नहीं कोयक भी भासै है अरु भासते जे ज्ञान वैराग्यादि सोभी सम्यक् नहीं भासैहैं कछूक भासैहैं अरु ऐश्वर्य सर्वज्ञत्व सर्वशक्तित्वादिक गुण जे हैं वे नहीं भासैहैं यद्यपि ज्ञानी स्वरूपसूं परमात्माते अभिन्नहैं तथापि उपाधिकृत भेदको आलंबन करिकै साम्यता निरूपण करी ॥ पूर्वपक्ष ॥ ऐसे अज्ञानीहै सोभी रामजीकोही प्रतिबिंब है तातैं अज्ञा-

नीके विषैभी प्रतिबिंब दृष्टांतकरिकै रामस्वरूपकी सम्यक् भान प्राप्ति होयगी तहां कहैहैं कि, सत्यं यद्यपि रामहैं सो स्वरूपसूं उहांभी सम्यक् भासैहै तथापि उपाधिके अविवेकसूं एक करिकै ग्रहण करैहैं ताते सम्यक् भासतो सतोही नहीं भासै है ताते ज्ञानीमें अज्ञानीसूं इतनोही विशेषहै ॥ १२ ॥ ॥

इति श्रीसत्सरूपावधारणं नाम प्रथमं प्रकरणम् ।

ऐसे सत्पुरुषको अधिक महिमा निरूपण करनेकेलियै सत्पुरुषको स्वरूप निश्चय कियोअब सतसंगको फल निरूपण करैहैं ॥ दोहा ॥ उनके सँग क्षणएकतैं, जोफलसुकृत होय ॥ बिन सतसंग शत जन्म करि, सो फल होय न कोय ॥ १ ॥ ॥ टीका ॥ वे कहे जे उत्तम भक्त उनूंके एक क्षण संगते उत्तम अधिकारीकूं जो ज्ञानादिक

फल होतहैं सो फल सत्संगकूं छोडिकै आपनी बुद्धिसूं जो सौजन्मलौं यत्न करै तौ कोय होवै नाहिं काहेतैं अतींद्रिय ईश्वरको शास्त्र गुरु उपदेश विना ज्ञान होत नाहिं ॥ १ ॥ अब सत-संगसूं जो फल होतहै सो कहेहै ॥ ॥ दोहा ॥ सतसंगतिते होतहै, ज्ञान भक्ति वैराग ॥ शुभ-गुन संपति होय सब, जानहै वस्तुविभाग ॥ ॥ २ ॥ ॥ टीका ॥ सतसंगते ज्ञान भक्ति वैराग्य होतहै अरु शम दमादि शुभ गुण रूप जो मुमुक्षुको सर्व धन ताकी प्राप्ति होतहै अरु सत्य असत्यादि वस्तुके विभागकूं जाणै हैं ॥ ॥ २ ॥ अब ज्ञानादिकफलको निरूपण करैहैं ॥ दोहा ॥ ॥ सुसंग बिना बहु कल्प करी, अ-बतक उपज्योनाहिं ॥ ज्ञानसो प्रगटै सहज ही, सतसंगतिके माहिं ॥ ३ ॥ टीका ॥ यो जीव जो है सदा संपूर्ण सुखकी प्राप्ति अरु संपूर्ण

दुःखकी निवृत्तिकूं चाहतोहै परंतु संपूर्ण सुखादिकको साधन जो ज्ञान ताकूं नहीं जानैहै तातें सतसंग गुरूउपदेशविनाही अपनी अटकलसूं मनसा वाचा सुखकी प्राप्ति अरु दुःखकी निवृत्तिको सदा यत्नहूं करतो रहैहैं सो यत्न करत बहुत कल्प भये तौहूं संपूर्ण सुखकी प्राप्ति अरु संपूर्ण दुःखकी निवृत्ति नहीं होत है काहेते वाको साधन जो परमात्माको ज्ञान सो अबताईं नहीं उपज्योहै ऐसो दुर्लभ जो ज्ञानहै सो सतसंगमैं अधिकारीकूं सहजै विना प्रयास हसतां खेलता उत्पन्न होतहै काहेते सत्पुरुषको स्वाभाविक वचनहै सोई उपदेशरूपहै॥ ३ ॥ अब भक्तिरूप फलकूं दिखावैहैं ॥ दोहा ॥ दृढसुभक्ति सतसंगते, होत रामकी जानि ॥ वसकरणी या अवसकूं, सदगुण संपति खानि ॥ ४ ॥ ॥ टीका ॥ ॥ जैसे धूरि

काढीमांसूं काठी सिला नहाय नहींहै तैसे विघ्नसूं अप्रतिहत ऐसी जो नारायणकी दृढ भक्ति सो सत्संगतैं होतहै फेर अवश जो मन ताकूं वशकरणेवारी अथवा अवश अजित जो ईश्वर ताकूं भक्तके आधीन करनेवारी फेर वा भक्ति कैसीहै भले जे गुण ज्ञान वैराग बिनयादि तिनूंकी तो खानिहै ॥ ४ ॥ अब वैराग दिखावैंहैं ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ साधूजनके संगते, उपजत दृढ वैराग ॥ जाबिन कोटिकयत्नतैं, मिटत न मनको दाग ॥ ६ ॥ ॥ टीका ॥ ॥ कुसंग करिकै हणायो नहीं ऐसो दृढवैराग जो है सो सतसंगते होतहै फेर सो वैराग कैसो है जैसै धातुपात्रका चीठा दाग अग्नि विना नहीं मिटैहै तैसै अनेक जनमका अभ्यास करिकै दृढ भयेऐसे जे रागादि कषाय वे जा वैराग विना

तपादि अनेक यतनतै नहीं मिटतहैं ॥ ५ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ अधिकार शून्य अधिकारि ह्वै, अधिकारीकूं ज्ञान ॥ रच्छन पोषन ज्ञानकी, संतन संगत मान ॥ ६ ॥ टीका ॥ अधिकारीका लक्षण वैराग्यादिरहित जो सतसंग करै तो अधिकारी होवै अधिकारी होयकै सतसंग करै तो ज्ञानहोवै अरु ज्ञान पायकै संत समागम करै तो ज्ञानकी रक्षा होय दिन दिन ज्ञान पोषकपावै दृढ स्थिति होवै ताते सदा सतसंग करणो ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ पुण्यवान जो करतहै, सतसंगतिमें वास ॥ को दिन करि सिध होतहै, सो जन बिना प्रयास ॥ ७ ॥ टीका ॥ बडभागी जो सतपुरुषोंके समीप रहैहै सो साधन श्रम विनाही उन्होंके वचन सुनिकै वर्ष दोय वर्षमें ज्ञानवान् होताहै ॥ ७ ॥ अब याही अर्थके रूपक करीकै

दृढकरैहैं ॥ ॥ दोहा ॥ सुकृति रोप कूठाममें, विफल नासकेजाय ॥ सुसँगबागकूं पायकै, उछरै फले सुभाय ॥ ८ ॥ टीका ॥ जैसें आम्रादि भला वृक्षको रोपो उकरडामैं उग्यो सो फलहूवां विनाही बीचमैं लोकोंके पावनीचे मारयोजाय अथवा छेरी गधा चारि जावै तैसे पुण्यवान् पुरुष भी कुसंगमें पड्यो ज्ञानादिक फलभया बिनाही अधबीचमें कांतादि छेरी करिकै अथवा गधा सरीखा पुरुषों करिकै मार्यो जाय है ऐसै व्यतिरेक कह्यो अब रोपाका दृष्टांत करिकैं अन्वय दिखावैहैं जैसे वा रोपाकूं कोई दयालु है सो उठायकै बागमें कहूं किनारे धरिदेवै तो फेर वाको कोई रक्षण पोषण मतिकरो तथापि और आम्रादिक को तो रक्षण पोषण करैगो तामें वाको भी रक्षण पोषण होयगो ऐसेही सो वृद्धि पावैगा दोय

चारि वर्षमें फलि रहेगा तैसें सत्संगमें प्राप्त भयो जो पुण्यवान् वाकूंभी उपदेशादि मतिकरो तथापि वे सत्पुरुष आपसमें कछू परस्पर संभाषण करैंगे वाहीसूं वाके ज्ञानादिक सिद्ध होयगे ॥ ८ ॥ तब अनधिकारी है सो भी उपदेश विनाही सज्जनके सहज वचन सुणिकै सिद्धि होयगो तहां कहैहैं ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ सज्जन सिंधु उमंगकै, रतन उफानें जाय ॥ भाग्यहीन भर मूंठिकूं, शंखसु हाथ भराय ॥ ९ ॥ टीका ॥ जैसै समुद्र उमगै है तब हिलोरमें रत्नादिक किनारै आय पडैहैं वे रत्न कोई भाग्यवानके हाथ आवै है उनूंकी देखा देखी कोई भाग्यहीन भी मूठी बाहै सो वाकी मूठीमैं संखल्यांही आवै हैं तैसे सतपुरुषके जब उमंग उपजै है तब बोले है तामैं गोप्य तत्त्वका प्रकाशकभी वचन निकसे है सो कोय अधिकारीकेही ज्ञा-

नादिक फलको दाता होत है अरु भाग्यहीन जो है सो सतपुरुषनको संग करिकै उनकै वचन सुणिकै द्वेष निंदादि दोष लेकर आवै है ॥ ९ ॥ अब संतसमुदायके परम पदका फलरूप करिकै कहैं हैं ॥ दोहा ॥ विन सतसंग भूलोपरै, धाम मुकामन पाय ॥ कहांसु कहां जातुरहै, लूट्यो मारचो जाय ॥ १० ॥ ॥ टीका ॥ जैसे च्यौर व्याघ्रादि व्याप्त उजारको जो मार्ग है तामैं काफला बिना एकाएकी अजाण्यो पुरुष जावै सो भूलि पडै धाम मुकामकूं पावै नांहि जांणा था नगरमैं अरु जाय पडै मैवासैमैं अथवा चौरौं करिकै लुटचौ जावै अथवा व्याघ्रादि करिकै मारचो जावै तैसे देवादि चोर कामादि व्याघ्र करिकै व्याप्त अरु मोक्ष मार्गमें कोय विरलाकी प्रवृत्तीहै सर्व पुरुष मात्रकी प्रवृत्ति नहीं है तातैं

उजार ऐसो जो मोक्षको मार्ग तामें साधु-
का साथकूं छोडिकै मनमुषी आप सूंहि
प्रवर्तें तो भूलोपडै अपना मार्गसूं भ्रष्ट होयकै
कुसंगमें जायपडै कै देवादिककै विघ्न करिकै लू-
ट्यो जावै कै कामादिक करिकै मार्‌यो जावै पर-
मधामकूं पावै नहीं ॥ १० ॥ ऐसै व्यतिरेक कह्यो
अब अन्वयकरिकें कहैहैं ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ साधूज
नकेसंगमें, कहुँबीषतानखाय ॥ मारग बूझन
नापडै, सहज परमपद पाय ॥ ११ ॥ टीका ॥
सज्जनके साथमे कोयसूंभी मुसावै नाहिं सहजें
रक्षाहोय अरु परमपदको मार्गबूझवो न पडै
उनूंके आचरणके अनुसार वर्तनेंते आपसूंही पर-
मपदकी प्राप्ति होत है ॥ ११ ॥ अब सत्संगके
फलकूं संग्रह करिकै कहै हैं ॥ दोहा ॥ ॥ भूति
भलाई भाग्यभग, सतसंगतितै होय ॥ बिन
सतसंग न पावही, कोटियतनकिय कोय ॥१२॥

॥ टीका ॥ जेतिक उत्तम विभूति जो मोक्ष प्राप्ति-का धन शम दमादि भलाई जो उत्तम यश भाग्य जो जेतेक उत्तम कर्म भग जे ज्ञान वैरागादि वे सर्वको सतसंग है सो कारण है ताते जो जाको कारण है ताहि सूं वा कार्यकी सिद्धि होय औरसूं माहिं जैसे तंतूसूंही पट होय मृत्तिकासूं नाहिं ॥ १२ ॥

इति श्रीसत्संगफलनिरूपणं नाम द्वितीय प्रकरणम् ॥ २ ॥

ऐसे सतसंगको फल कह्यो अब सतसंगहै सो सर्व मोक्ष साधनको कारण है तातें सर्वसाधनसूं सतसंगकी अधिकता निरूपण करैं हैं ॥ दोहा ॥ सतसंगतिके लेसते, जनकूं जो फलहोय ॥ तप तीरथ व्रत दान मख, सब मिलि करैं न कोय ॥ ॥ १ ॥ टीका ॥ सतसंगको लेश जो घडी दोय-घडीको संग है सो उत्तम अधिकारीकूं जो संसार

दुःखकी अत्यंत निवृत्तिरूप जो मोक्षफलकूं करै
है वाकूं तपादि सर्व साधन मिलिकै अनेक जन्म-
के भी साक्षात् कोई करिसकै नहीं काहेते वे क्रिया
रूप जडहैं ताते साक्षात् मोक्षको कारण नाहिं॥ १॥
याहीकूं दृष्टांत करि दृढकरैं हैं॥ ॥ दोहा ॥ लघु
बालक मृगराजको, मारत गजकूं धाय ॥ सब
मिलिकैं वनके पशू, सो गज हन्यो नजाय ॥२॥
॥ टीका ॥ जैसे सिंहको छोटो बच्चो जा गजकूं
मारैहै वा गजकूं हरिण रोझादिक सर्व पशु हैं वे
न्यारे एक एकतो कहां मारि सकैं परंतु सर्व
भेलाहोयकै भी मारनेकूं सक्य नाहिं होतहैं तैसे
यज्ञादि मोक्ष नहीं करि सकैं हैं ॥ ॥ २ ॥ दोहा ॥
गंगा यमुना सरस्वती, तीर्थ गुरु तीर्थराज ॥
तीरथ कर तीरथसबै, समनहिं संतसमाज ॥ ३ ॥
॥ टीका ॥ तीरथ गुरु पुष्कर तीरथराज प्रयाग

वे गंगादि सर्व तीरथ है वे तीरथ करेहैं पवित्र
कारीहैं पापकी निवृत्ति करेहैं ताते व्यर्थ नाहिं
तौहू सतसंगकी बराबर नाहिं काहेते सतसंग
अज्ञानादि मलकी निवृत्ति होतहै सो इन
होतनाहिं ॥ ३ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ यज्ञादिक
साधन सबै, शुचिफल भल जगमाहिं ॥ स
ब फल संतसमाज सम, येभी साधन ना
हिं ॥ ४ ॥ ॥ टीका ॥ ॥ जगतमें यज्ञादि
कजे साधन हैं वे सब शुचि पवित्रकारी
निर्दोष हैं फेर स्वर्गादि फल सहित हैं भले
उत्तमहैं बुरे नाहिं तथापि सतसंग बराबर हैंनाहिं
क्योंकि वे आप आपके फलके हेतु हैं अरु स
तसंगहै सो सर्व फलको हेतुहै यज्ञादिक पुण्य
कर्मसूं जोजो पापकी निवृत्ति होत है सो स
एक सतसंगसूंही होत है अरु यज्ञादिकको फल
जो स्वर्ग सुखादिक है सो सब सतसंगको फल

जो मोक्षसुख तामें अंतर्भूत है जैसे अमृतरसमे सर्वरस अंतर्भूत हैं सर्व साधनसूं अधिक सतसंग है सो पुरुषकूं सदा सर्वथा करणों योग्यहै ॥ ४ ॥ अब याही अर्थको दृष्टांत करके दृढ करैहैं ॥ दोहा ॥ ज्यों आम्रादि सुवृच्छ हैं, भलैंपलव फल फूल ॥ भलेभये तो कह भयो, भयो कलपवृच्छ तूल ॥ ५ ॥ ॥ टीका ॥ ॥ जैसे भले पल्लव फल फूल कारिकैं आंबपनसादिक वृक्ष हैं सो बबूल खैरादिकसूं भलेहैं ताते कछू कल्प वृक्षसूंभी अधिक होंयगे अधिक नाहिं काहेतें कल्पवृक्षसूं आंब पनसादि सर्व फलकी प्राप्ति होत है आम्रादिकसूं आप आपके फलकीही प्राप्ति होत है सोभी फल कालमें होय और कालमें नाहिं भी होंय ताते सर्व वृक्षसूं कल्पद्रुम अधिक है तैसे सतसंग सर्व साधनसूं अधिक है काहेतें याते

सर्व फलकी प्राप्तिहोत है ॥ ८ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥
यज्ञ करो कोइ व्रतकरो, तप तीरथ करो कोय ॥
सबतजि सतसंगतिकरो, रामचाहनाहोय ॥ ६ ॥
॥ टीका ॥ स्वर्गादिककी इच्छा होय तो
यज्ञादिक करो अरु जो रामरूपकी चाहना होय
तो सो सर्वकूं छोडिकै सतसंग करो ॥ ६ ॥
काहेते रामजीकी प्राप्तिको द्वार सतसंगही है
सोई अन्वय व्यतिरेक करिके कहैंहैं ॥ दोहा ॥
बिन सतसँग हरि नामिलै, हेरयौ वैकुंठधाम ॥
सतसंगतितै पाइये, सो हरि सबही ठांम ॥ ७ ॥
॥ ॥ टीका ॥ ॥ नारायणकै बतावणेवारा सत-
पुरुष मिल्या विना नारायण या लोकमें न
मिलै सोतो न मिलै परंतु जा वैकुंठमें नाराय-
ण सदा चतुर्भुज मूर्तिरहे है ता वैकुंठमें भी न-
मिलै काहेते गुरु बिना गोविंदकी प्राप्ति होत
नाहिं यो व्यतिरेक कह्यो अब अन्वय करिकै

कहैं हैं जो हरि सतसंगविना वैकुंठमें नहीं मिलै है सो सतपुरुष मिलै तो सर्वत्र मिलैहै काहेते व्यापक स्वरूप करिकै सर्वत्र रह्यो है ॥ ७ ॥ अब याही अर्थके दृष्टांत करि प्रगट दिखावैंहैं ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ सद्विमुख दैत्यराजकूं, मिल्यौ वैकुंठमें नांहि ॥ लख्यो सर्वत्र प्रहलादने, खंभ खड्गके माहिं ॥ ८ ॥ टीका ॥ सनकादिक सतपुरुषोंको द्रोही जो हिरण्यकशिपु सो सर्वलोकको दिग्विजय करिकै नारायणके जीतवेको योग तपादिकका बल करिकै वैकुंठमें गयो तब नारायणने वाकेभीतर प्रवेश कियो तब याने सर्वत्र बाहिर हेर्‍यो पण पायो नाहिं तब मेरे तेजसूं भागि गयो ऐसै मानिकै दैत्य पीछे आयो सो यह कथा भागवतमें प्रसिद्ध है अरुजो हरि दैत्यराजको वैकुंठमें न मिल्यो सोई हरि नारदजीके प्रसादते प्रह्लादने सर्वत्र खंभ खड्गादिकमें देख्यौ

॥ ८ ॥ यज्ञादिकसूं नारायणकी प्राप्ति नाहिं सत
संगसूंही नारायणकी प्राप्ति होतहै यामें का
रण कहा तहां कहैंहैं ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ सतसंगति
ते होत है, हरिको निर्मलज्ञान ॥ जाबिन को
टिक यत्नतें, मिटै न मोह अज्ञान ॥ ९ ॥
॥ टीका ॥ ॥ सतपुरुषनके संगते अधिकारीको
नारायणको निर्मल असंभावना विपरीति भाव
नारूप मलरहित ऐसो जो ज्ञान सो होत है जा
ज्ञान अनेक यत्नते मोह अरु मोहको कारण
अज्ञान सो मिटत नाहिं ॥ ९ ॥ याही अर्थको
स्पष्ट करै हैं ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ प्रलय अग्निके ते
जते, द्वादशरविकी ज्योति ॥ जो तम मिटै न सो
तमैं, सतसँग दूरीहोति ॥ ॥ १० ॥ ॥ टीका ॥
प्रलयकालके विषे प्रलय अग्निकी ज्वाला अ
द्वादशसूर्यकी ज्योति सर्व भेला होतहैं तब स
ब्रह्मांडमें कहूँ भी तम रहतनाहिं तब भी वा प्रका

ासूं अज्ञानरूप तम नाश नांहिं होत है ऐसो जो
म सो अधिकारीको सतसंगतितें दूरि होतहै
ाते सतसंग है सो सर्वसूं अधिक है ॥ १० ॥
ब सतसंगकी स्तुतिद्वारा सात दोहा करि-
क अधिकता निरूपण करैहैं ॥ ॥ दोहा ॥ ॥
ज्ञाननिशा मोहनीदमैं, सूतो लहै सु स्वपन ॥
ाहिबोधक तम नाशकरि, दिनमनी है हरि-
न ॥ ११ ॥ टीका ॥ आवरणको हेतु है
ासूं अज्ञान है सोई निशा अरु नाना भ्रमको
तु है ताते मोह है सोई निद्रा तामैं गर्क भयो
ो जीव सो नानाजन्मरूप स्वप्नको अनुभव
रै है अरु मैं सुखी दुःखी ऐसे अन्यथा अन्यथा
के है ता जीवकूं जगावणेंवारो अरु अज्ञान
मको नाश करनेवारो हरिजन है सोई दिनमणि
र्य हैं ॥ ११ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ चक्र वज्रकी धारते,

कटैं न मोहकि पासि ॥ सतसंगतिते सहज
ही, बंध होत है नाशि ॥ १२ ॥ टीका ॥ दे
इंद्रिय प्राणादिकके विषे अहंबुद्धि अरु स्त्री पुत्रा
दिकके विषे ममत्वबुद्धि रूप मोह जो है सं
पाशिबंधकी नाईं या लोककै औ परलोकके
अनेक दुःखको हेतु है ताते जीवके योही बंध
सो अनादिकालको है और जो आदि बंध है सो त
काल करिकै जीर्णहोत है अरु यो बंध है सो दिन
दिन नयो होत है और बंध शस्त्रसूं कटचोजात
है सो भगवान्को सुदर्शनचक्र इंद्रको वज्र ताकी
तीखी धारसूंभी नहीं कटचोजात है काहेते धार
स्थूल है यो सूक्ष्महै ताते धाराको स्पर्शभी नाहिं
होत है ऐसो जो बंध सो सतसंगतें सतपुरुषनके
वचन सुनतेसुनते सहजै नाशहोत है अहो देखो
यो सतपुरुषको महिमा ॥ १२ ॥ दोहा ॥ शोक
दवानलजलत है, जन मन बनकै माहिं

सज्जन घन वरषा विना, सो दव बुझ है नाहिं ॥ १३ ॥ टीका ॥ जैसे महावनमें लग्यो दवासो आठ मासतो सदा जलतोही रहै है काहेतें वन बडो है तासूं न आपसूं बुझै न और पुरुषोंका जलफेकारादि यत्नसूं बुझै एक मेघकी झडीसूंही बुझै तैसै जीवको मनरूप जो वन तामेंहूं शोकरूप दवाड अनादिकालको लग्योहै सो सदा जलतोही रहै है सो सज्जनरूप मेघकी वचनरूप झडी बिना और उपायसूं बुझै नाहिं सतपुरुषका वचनसूंही अंतःकरण शीतल होय ॥ १३ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ संसार सिंधु माहिं पर्‍यो, रह्योसु गोते खात ॥ ताकूं तारक तरनि सम, सतसंगति विख्यात ॥ १४ ॥ टीका ॥ ॥ समुद्रके बीचमें पड्यो अरु थकि गयो न आपसूं निकसै है अरु न औरोंसूं काढ्योजात है वाके

भाग्यको एक नाव है सोई निकासनेको उपायहै और है नाहिं तैसे संसारसमुद्रमें अनादिकालको जीव पड्यो है ताते ज्ञानादि बल क्षीण भयो है सो जन्ममरणादिरूप गोते खावै है ताकूं तारणेवारी सतसंगतिरूप नाव है सो शास्त्रमें प्रसिद्ध है और उपाय है नाहिं ॥ १४ ॥ दोहा ॥ विषम विकट संसार मग, विघ्न बहुत दुखधाम ॥ तामें जीव बटाउकूं, सतसंग पुरविश्राम ॥ १५ ॥ टीका ॥ जैसे उजाडको मार्ग ऊंचानीचा पर्वतोंकरिकै विषम है पशुपक्षीका शब्द करिकै भयंकर है चौर व्याघ्रादि विघ्न अरु सूर्यकी धूप करिकै बटाऊकूं क्लेशको हेतु है तामें सुख विश्रामको ठाम एक नगर है और नहीं तैसे जीव बटाऊकूंभी यह संसाराटवीछे है सोभी स्वर्गनरकादि करिकै विषम है अरु शत्रुखलादिकके शब्दकरिकै भयंकर है

मृत्यु रोगादि विघ्न अरु अध्यात्मादिक तापत्रय करिकै व्याप्त है तामें संतसमाज है सोई पुररूप विश्रामको ठाम है । पुर कहनेको यो भाव है जैसे अरण्यके वृक्ष हैं सोभी वटाऊकूं फल छायाकरिकै घडी दोयघडी विश्रांतिको हेतु होत है सदा निवासको हेतु है नाहिं काहेते अन्नजलादिकको उहां अभाव है अरु व्याघ्र चोरादिक विघ्न बहुत हैं अरु पुरकेविषे जो थाको है पुरुष सो एक रात्रि रहिकरि थकेलो गमायके प्रभाते अपनी राह पकडे हैं अरु जो चालिवे करिकै अथवा रोगादिक दुःख करिकै अत्यंत पंथसूं ग्लानिको पायो है सो पुरमें जायकै सदा निवास करैहैं काहेते उहां देहके योगक्षेमको यत्न करणो नहीं पड़ै है उहांके लोगही दुःखीकी रक्षा करै हैं तैसे संसार मार्गमैंहूं ग्रह

दारादि विषय हैं सो अरण्यके वृक्षकी नाईं क्षण
विश्रांति का हेतुहै अरु बहु विघ्न दुःखादि क-
रिकै व्याप्त हैं अरु संतसमाज जो है सो पुरकी
नाईं सदा निवास करनेलायक है तामें जो पुत्र
धनादिका वास करि संसारसूं दुःखी भयो सो
थाके हारयाकी नाईं संतनमें कोईकाल रहिक-
रिकै दुःख गमायकै अपनो मार्ग पकडै है अरु
जो संसारसूं अत्यंत ग्लानिको पायोहै सो दुःखी
की नाईं सदा संतनमैं निवास करैहै ॥ १८ ॥
अब यो कह्यो जो भाव वाहिकूं दोय दोहा करिकै
कै दिखावैंहैं ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ निजल निरच्छक
सभय अध, छन विश्रांतिको हेत ॥ आरण्य
वृक्षवत् विषय सब, निर्भय सुखन निकेत ॥१६॥
थाक्यो हारयो पथिक जिमि, करि पुर माहि
सुवास ॥ त्यों मुमुच्छु सतसंगमें, करही सदा

निवास ॥ ॥ १७ ॥ ॥ टीका ॥ ॥ याको अर्थ पीछे भावमें दिखायोहीहै ॥

इति श्रीसर्वसाधनाधिक्यंनिरूपणंनाम तृतीयप्रकरणम् ॥

पछिले प्रकरणमें सर्व साधनके विषे सतसंगकूं श्रेष्ठ साधनरूप करिकै निरूपण कियो अब स्वर्गादिक जेतेक फल हैं तिन्हके मध्येभी सतसंग श्रेष्ठ फलरूप करिकै निरूपण करै हैं ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ सतसंगति सम जगतमें, पुण्यको फल नहिं आनि ॥ सतसंगति ते मुक्ति है, अनफलते जनहानि ॥ टीका ॥ ॥ स्वर्ग राज्यादिक जो पुण्यका फल है वाके विषे सतसंगकी प्राप्तिहै सोभी कोयक महापुण्यको फल है तातैं याके समान स्वर्गादि फलभी नाहिं अधिक ताके विषे कारण कहैं हैं कि सतसंगसूं भवबंधकी निवृत्ति होत है अरु स्वर्गादि भोग क-

रिके पुण्य क्षीण भयेते अधःपात होतहै सो कह्यो है गीताजीमें " क्षीणेपुण्येमर्त्यलोकेविशंति ॥ " इति॥ ताते स्वर्गादिकसूंभी सतसंग है सो अधिक है ॥ १ ॥नतु कर्मको फल स्वर्गादि ताकी बराबर सतसंग मतीहो परंतु उपासना ज्ञानादिकको फल जो मुक्ति ताकी बराबर तो होयगो तहां भागवतका श्लोकार्थकरिकै मुक्तिसूंभी अधिकता दिखावैं हैं ॥ श्लोक ॥ तुलयामलवेनापि नस्वर्गना पुनर्भवम् ॥ भगवत्संगिसंगस्यमर्त्यानां किमुताशिषः ॥ २ ॥ ॥ याकोअर्थ ॥ भगवान् जो समग्र ज्ञान वैराग्यादि षट्भग संपन्न ईश्वरकोसंग संबंधहै जिनूंके तिनूंकूं भग वतसंगी कहिये ऐसे जे भक्त तिनूंका संगको लेशकहिये लक्षणावृत्ति करिकै घडी दोयघडीको संग ताकी बराबर स्वर्ग और मोक्ष है सोभी नकरै तो मनुष्य भोगकी कहा कहणीं ॥ २ ॥ सो या अर्थकूं दोहामें दिखा-

वैं हैं॥ ॥दोहा॥ ॥ सतसंगतिके लेश सम-
स्वर्ग अपवरगहु नांहिं ॥ मनुष्यभोगकी को
कहै, अती अल्प जगमाहिं ॥ ३ ॥ ॥ याको
अर्थ श्लोकार्थमेंभयो ॥ पूर्वपक्ष ॥ जैसे राजाके
चाकरकी हमारे तो तुमही राजा हो ऐसे कोयने
स्तुतिकरी परंतु वामें कछु राजाको चिह्न नहीं
देखिये है तैसे सतसंगमें जीवोंकी प्रवृत्तिके लिये
स्वर्गादिकसूं अधिकता करिकै यो श्लोक सत-
संगकी स्तुतिमात्र करै हैं ताते यह अर्थवादहै
यथार्थ वाद नाहिं है काहेते स्वर्गादि समान
सुखकोभी सतसंगमें अनुभव होतनाहिं तो स्व-
र्गसूं अधिकता सो कहा अरु सतसंगकरत
जनम गयो तोभी भवबंध निवृत्तिको भी अनु-
भव होतनाहिं ऐसी आशंका लैकरि स्वर्गसूं सत-
संगकी अधिकता निरूपण करै हैं ॥ ॥ दोहा ॥
सतसंगतिते मुक्तिहै, स्वर्ग भोगते पात ॥ सो

सम कैसे होयगो सतसंगतिके तात ॥ ४ ॥ ॥ टीका ॥ ॥ या श्लोकमें उत्तमभक्तको संग उत्तम अधिकारी करे सो मान्य है ताते उत्तम भक्तके संग करिकै भगवत्तत्त्वका प्रकाशिक वचन सुणिकै भवबंधकी निवृत्ति रूप मोक्ष अरु जासुखमें स्वर्ग सुखबह्यो बह्यो फिरै ऐसो परमानंद समुद्र सो उत्तम अधिकारीके अनुभव सिद्ध है अरु स्वर्ग भोगते अधःपात होत है सो भी शास्त्रमें प्रसिद्ध है ताते अधोगतिको हेतु स्वर्ग जो है सो मोक्षको हेतु सतसंगतिकी बराबर कैसे होयगो याते कनिष्ठ भक्तके संगते मंद अधिकारीकूं परमानंद अरु भवबंधकी निवृत्तिको अनुभव न भयो ताते या श्लोककूं अर्थवाद न कहणो किंतु यो यथार्थवादही है जैसे नपुंसक पुरुष अरु वंध्या स्त्री

उनको संग निष्फल देखिके सर्व स्त्रीपुरुषका संगकूं व्यर्थ नहीं मानतो ॥ ४ ॥ जब सतसंगसूं मुक्ति प्राप्त होत है तब सतसंगहै सो मुक्तिके बराबर तो भयो जैसे रूपियाकी चीज ल्याया सो रूपीयाको मालहैतासूं रूपिया बराबर है ऐसी आशंका लेकरि कहैं हैं ॥ ॥ दोहा ॥ ॥

सज्जन सँग क्षणएकके, समान मुक्तिभी नाहिं ॥
मुक्ति अनेक हैंसंतकी, संगतिकेक्षणमांहिं ॥ ५ ॥

॥ टीका ॥ सतसंगतिकी क्षण बराबर मुक्तिनांहिं है काहेते सतसंग है सो कारण है अरु भवबंधकी निवृत्तिरूप मुक्ति है सो कार्य है ताते कारणमें अनेक कार्य करनेकी शक्ति रही है सो कारण एक कार्य बराबर कैसे होयगो जैसे अनेक फलको कारण वृक्ष है सो एक फलके सम कैसे होयगो ताते मुक्तिसूंभी सतसंगको क्षण है सो अधिक है अरु तैंने जो चीज रूपियाको

दृष्टांत दियो सो इहां उचित नाहिं काहेतैंवो दृष्टांतमें क्रियविक्रिय भाव है अरु दार्ष्टांतमें कार्यकारणभाव है ताते दृष्टांत दार्ष्टांतके साम्य नाहिं है ॥ ९ ॥ अब यो कह्यो जो अर्थ वाहीकूं दृष्टांतकरि प्रगट दिखावैं हैं ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ सतसंगति क्षण एकमें, अनिक मुक्ति होय जाय॥ दक्षपुत्र भये मुक्त जिम, नारदको सँगपाय ॥ ॥ ६ ॥ ॥ टीका ॥ ॥ जैसे दशहजार दक्षप्रजापतिके पुत्र थे वे नारदजीके संगके एक क्षणमें एक साथ दशहजार मुक्त भये तहां यद्यपि बंधकी निवृत्तिस्वरूप एक है तथापि बंधनिवृत्तिका प्रतियोगि रूप दशहजार पुरुषका बंधहै वे पृथक् न्यारा न्यारा दशहजारहैं तातैं प्रतियोगी रूप बंधकै भेद करिकै तिनूंकी निवृत्तिरूप मुक्तिभी न्यारी न्यारी दशहजारभई तामेंसूं एक मुक्तिकूं लेकरि सतसंगकै क्षणकूं जो तो-

लिये सो कैसे बराबर होयगो यातैं मुक्तिसूंभी सतसंग है सो अधिक है तातैं मुक्तिकोभी अनादर करिकै सदा सतसंग करणो योग्य है ॥६॥ अब सतसंगकी पुष्टिके अर्थकूं संगसूं सर्व अनर्थकी प्राप्ति संक्षेपसूं दिखावैहैं ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ कुसंगकै छिन एकते; होत सिद्धिको नाश ॥ मच्छ क्रीडाकुँ देखिकै ॥ सो भरी वरी पचाश ॥ ७ ॥ ॥ टीका ॥ ॥ जैसे सतसंगके अल्पकाल करिकै वाल्मीकि नारदादिक अधम थे ते सिद्धभये तैसे अल्पकालका कुसंग करिकै सिद्ध जो आरूढ योगी है सो भी भ्रष्ट होत है तो और क्षुद्रजीव भ्रष्ट होय वाको कहाकहणो याहीअर्थकूं दृष्टांतकरिकै दृढ करैं हैं मछेति जैसे जमुनामें मच्छ मच्छीके संगमकूं देखिकै सौभरीऋषि था सो पचास मानधाताकी बेटीनकूं व्याहाये ऐसे पराशर शृंगीऋष्यादि जाणि लेने सो कह्यो है ॥ ७ ॥

॥ श्लोक ॥ निःसंगतामुक्तिपदंयतीनांसंगादशेषाः प्रभवंतिदोषाः।आरूढयोगोपिनिपात्यतेधः संगेन योगीकिमुताल्पसिद्धिरिति ॥ याको अर्थ ॥ यती जे जितेंद्रिय है सोई तिनूंके निःसंगता जो कांतादि कुसंगको त्याग है सोई मुक्तिको हेतु है ताते मुक्ति पद अरु जो जितेंद्रियका अभिमान करिकैअथवा प्रमादसूं अल्पकालहूं कुसंग करै तो संपूर्ण कामादिदोष अवश्य उत्पन्नहोय काहेते प्रबल कांतादि विषयको संग जो है सो सिद्ध- योगीकूंभी नीचे डारै तोषअल्पसिद्धिवालाकूं भ्रष्टकरै वाको कहा कहणो है यद्यपि योग वैराग्यादि बलकरि कामादिको जय कियो है तथापि कामादिकके संस्कार शेष रहे हैं सो प्रबल कांतादि विषयको संग है सो फेर कामा- दिकूं उत्पन्न करतहै जैसे अग्नि बुझायडाऱ्यो

परंतु अग्निको संस्कार उष्णतारही है सो दारुके संगसूं फेर ज्वालाकूं उत्पन्न करत है ताते सर्वथा कुसंगको त्याग करणों अब कुसंगकूं सर्व अनर्थको मूल करिकै कहेंहैं ॥ दोहा ॥ ॥ कुकर्म कुलक्षणकुयशहूं, कुमति कुगति दुःख होय ॥ मूल कुसंग न कीजिये, भलो चहै जो कोय ॥ ८ ॥ ॥ टीका ॥ ॥ प्रथम कुंसंगसूं कुमति पाप करणेकी बुद्धि होतहै फेर काम क्रोध चोरादि रूप कुलक्षण उत्पन्न होतहै ता कुलक्षणसूं परस्त्री परधनादिकको हरण करैहै उनके स्वामीको हनन करैहै बालहत्यादिक निषिद्धकर्मकूं कुसंसूंही करै है ताते कुसंग कर्मसूं या लोकमें कुयश राजदंडादिककी प्राप्ति होतहै अरु परलोकमें नरकादिक दुर्गतिकी प्राप्ति होत है याते जेतीक कुबुद्धि जेताक कुलक्षण जेताक कुकर्म जेताक

कुयश अरु जेतीक दुर्गती तिन सर्वको कारण कुसंगही है ताते जो कोई आपको भलो चाहै है सो भूलिकैभी कुसंग न करै सदा सत-संगही करै ॥ ८ ॥

इतिश्रीसर्वफलाधिक्यनिरूपणंनामचतुर्थप्रकरणम् ॥ ४ ॥

अब भगवतसंगसूंभी भगवद्भक्तकासंगको आधिक्य निरूपण करै हैं ॥॥ दोहा ॥॥ हरिजनकी संगति विना, हरिसँगते सिधिनाहिं ॥ संग-सदा हरिको बन्यो, फिरत चौरासी मांहि ॥ १ ॥ ॥ टीका ॥ नारायणके दोय स्वरूप हैं तहां सतपुरुष है सो विशेषरूपहै अरु सर्वत्र अनु-गत अंतर्यामी जोहै सो नारायणको सामान्य स्वरूप है तातैं विशेषरूप जो हरिभक्त ताका संबंध उपदेशादि विना सामान्य ईश्वरका संबं-धसूं जीवके भक्ति ज्ञानादिक साधन अरु फल

जो मोक्ष ताकी सिद्धि नाहिं है काहेते कारण विशेषसूं ही कार्य विशेषकी सिद्धि जगत्में देखी है सामान्यसूं नाहिं सोई दिखावैंहैं नारायणके सामान्य स्वरूपकी प्राप्ति सर्व जीवमात्रकै बनी है तोहूं नरकादि दुर्गतिकूं जीव पावै है ताते जो सामान्य ईश्वरकी प्राप्तिसूंही मोक्ष होय तो सर्वही जीव गुरुउपदेशादिविनाही मुक्तहोय सोतो नाहिं देखिए हैं ताते सतसंग है सोई ज्ञानादिक सर्वको कारण है ॥ १ ॥ पूर्वपक्ष ॥ "मामेवयेप्रपद्यंते मायामेतांतरंतिते" इति ॥ याको अर्थ ॥ जो मोकूं पावै है सो सर्व बंधकी हेतुरूप जो मेरी माया ताकूं तिरै है ऐसे भगवान्ने आपकी प्राप्ति सोइ मोक्षको हेतु कह्यो है तुम वाको निषेध कैसे करोहो तहां उत्तर कहै हैं॥ ॥ दोहा ॥ हरि सुजननके संगतै, भयो हरीको संग ॥ ता-

करिकै सिधि होत सब, ह्वैसमूल भवभंग ॥ २ ॥
॥ टीका ॥ ॥ नारायणकी प्राप्तिसूं तैं संसार
बंधकी निवृत्ति कही सो तैं साँची कही परंतु सो
प्राप्ति कौनसी है हरिजनके संगसूं हरिजनके
उपदेश करिकै अंतःकरणमें प्राप्तभयो अभिव्यक्त
जो हरि वाके संगसूं ज्ञानादिक सर्व साधनकी
सिद्धिहोत है अरु ज्ञानादि वृत्तिमें अभिव्यक्त
भयो जो परमात्मा ता करिकै मूल अविद्या स-
हित संसारबंधकी निवृत्ति होत है ताते ज्ञान
सामान्य करिकै ईश्वरकी प्राप्तिसूं मोक्षकी सिद्धी-
को अभाव कह्यौ सो भगवद्वाक्य सूं विरुद्ध नाहिं
॥ २ ॥ योकह्यो अर्थकूंही दृष्टांत करिकै दृढ करैं
हैं ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ सामान्य अग्निके संगतैं,
जलत न सूकोसाल ॥ ज्वलत काष्ठके संगतैं ॥
जलि बलि होत है लाल ॥ ३ ॥ ॥ टीका ॥ ॥
जैसे काष्ठमें सामान्य अग्नि रह्यो है अरु काष्ठभी

सूको है तौहूं जलै नाहिं है काहेते सामान्य अग्नि है सो काष्ठको विरोधीनाहिं काहेते वा अग्निके अरु काष्ठके व्याप्य व्यापकरूप सामान्य संबंध है परंतु दाह्य दाहकरूप विशेष संबंध नाहिं है अरु जल ता काष्ठमें विशेषरूप जो अग्नि वाकेसंगसूं काष्ठ है सो जलके लाल अग्निरूप होत है तैसे सर्वत्र माया अरु मायाके कार्यमें रह्यो जो सामान्य ईश्वर सो मायाको विरोधी नाहिं जो शुद्धसत्त्वयुक्त साधुका उपदेशकरि भई जो शुद्ध सत्त्वमयी ज्ञानादि वृत्ति तिनूके विषे अभिव्यक्त जो ईश्वरको विशेषरूपहै सोई माया अरु मायाका कार्य बंधको विरोधी है ताते संतसंगहै सोई ज्ञानादिक सिद्धिको कारणहै ॥ ३ ॥ पूर्वपक्ष जैसे विशेष अग्निके संग बिनाहूंमथेते समान्य अग्निसूं भी काष्ठ जलिजातहै तैसें बिचार किये

ते सामान्य ईश्वरसूं भी बंधकी निवृत्ति होयगी
याते सतसंग कहासूं होणोहै तहां कहतहैं ।
॥ दोहा ॥ मथनहि करि प्राप्त भयो, विशेष का
ष्ठकुसंग ॥ विशेष अग्निसो होयकै, करत काष्ठ
को भंग ॥ ॥ ४ ॥ टीका ॥ दृष्टांतमें मथवेते सा
मान्य अग्निहै सोई काष्ठ विशेष विशेषअंशसूं
मिलिकै विशेष अग्नि रूप होय कै काष्ठको नाश
करताहै परन्तु विशेषरूप हूवेविना काष्ठको
नाशकरै नहीं तातैं कह्यो जो नियम वाको
भंगनांहिं अरु दार्ष्टांतमें सो सतसंग विना ईश्वरको
विचारहू उपजै नांहींतो सामान्यसोंबंधकीनिवृत्ति
कैसेहोय अरु जो विचार उपज्यो तो विचारात्मक
सात्त्विकवृत्तिमें अभिव्यक्त विशेष रूप करिकैही
बंधकी निवृत्ति भई ताते विशेषरूप सूंही मोक्षकी
सिद्धिहै सामान्यसूं नाहिं यो जो नियमहैताको

भंग नाहिं ॥ ४ ॥ दोहा ॥ पाक प्रकासन होम कछु, समान्य अग्निते होय ॥ त्यूंविशेष सतसंग बिन, भ्रम तम मिटैन कोय ॥ ५ ॥ टीका ॥ जैसे काष्ठपर रसोई की सामग्री धरि राखो परंतु काष्ठमें रह्यो जो सामान्य अग्नि तासूं पाककी सिद्धि होतनाहि तैसे समान अग्नि सर्वत्र रह्योहै परन्तु ताते प्रकाशकी अभिव्यक्ततातमकी निवृत्ति सो होत नांहिं अरु होमादिक कर्म सोवी सामान्य अग्नितै होत नाहिं तैसे नारायणको विशेषरूप जो सतपुरुष वाका संग विना संसार भ्रम अरु संसारभ्रमको कारण अज्ञानरूप तमसों मिटै नांहि ॥ ५ ॥ तैसे सामान्य कारणसूं सामान्यकार्य कीही सिद्धि होय कार्य विशेषकी सिद्धि होत नांहिं यो कह्यो जो अर्थ सोई दृष्टांत करिकै कहैहैं ॥ दोहा ॥ मेघईशअ-

नुकूलतैं ह्वै समान तृणनाज ॥ बाग ज्ञानसिधि होत नहिं ॥ बिन वापि संतसमाज ॥ ६ ॥ ॥ टीका ॥ जैसें साधारण कारण मेघकी अनुकूलतासूंतृणान्नादि समान्य कार्यहोतहे परंतु असाधारण कारण रूप वापिकादि विना विशेष कार्य जो बाग बाटिकादिक ताकी सिद्धि नाहिं होतहे तैसें साधारण कारण ईश्वरकी अनुकूलतासूंबी गुरुवादिक असाधारणकारण विना सामान्यकार्यकी ही सिद्धिहोवे परंतु विशेष ज्ञानादिककी सिद्धिहोतनाहिं ॥ ६ ॥ पूर्वपक्ष ॥ मत्तःस्मृतिर्ज्ञानमपोहनंचइत्यादि ॥याको अर्थ॥ मैंजो ईश्वर सो मेरेसूंहि जीवोंकीहै स्मृति ज्ञान अरु ज्ञानसे स्मृतिको नाशसो होतहै ऐसेभगवाने आपसूंही ज्ञानादि कार्यकी सिद्धि कहीहै सो तुम निषध कैसेकरोहो तहां कहैंहैं॥ ॥ दोहा ॥ सकृत कृपाते होतहै, ज्ञानसु ठहरै नाहिं ॥ भलो

रोप ठहरै नहिं, भयो वर्षाऋतुमाहिं ॥ ७ ॥
॥ टीका ॥ जैसे वर्षाऋतुमें वर्षाके जलसूं आम्रादिकका रोपा जहां तहां होत है तथापि कूपादिकको जल सींच्यांविना और ऋतुमें ठहरै नाहिं सूकिजातहै तैसे केवल एक ईश्वरकी कृपासों भयो जो ज्ञान सोभी सत्पुरुषसों संभाषणरूप पोषणविना स्थितिकूं नपावै जैसे नारायणके जन्म समयके बिषे देवकीवसुदेवकूं अरु नंदादि गोपोंकूं गुरुवादि असाधारण कारण विना केवल नारायणकी कृपासूंही नारायणके ज्ञानभयो है परंतु ज्ञान ठहरचो नांहिं काहेते फेरि नारदादिक गुरु करणे परे ताते सतसंगादिक है सोइ ज्ञानादिकको असाधारण कारण है ॥ ७ ॥ दोहा ॥ बारामासजु चाहिये, जैसे बागकँ काज ॥ त्यों ज्ञानादिक चहतहैं, सदा सुसंत समाज ॥ ८ ॥ टीका ॥

जैसे बाग है सो बारामास जल चाहै है ताते कुवा बावडी अवश्य करणो तैसे ज्ञानादिकभी आपकी उत्पत्ति स्थिति वृद्धि पुष्टादिकके अर्थ उपदेशकूं चहतहैं ताते सदा सतसंग करणों ॥८॥

इतिश्री हरिहरिजनातिशयोक्तिनाम पंचमंप्रकरणम् ।

अब ऐसे संतकी दुर्लभता निरूपण करैंहैं ॥

॥ दोहा ॥ ॥ हरिदुर्लभ नहिं जगतमें, हरिजन दुर्लभ जोय॥ हरि हेरचोसगरे मिलै, हरिजन कहींककोय ॥ १ ॥ ॥ टीका ॥ ॥ जगतमें सर्वत्र परिपूरण ऐसो जो नारायण हैं सो दुर्लभ नहीं है ऐसा परिपूरणको बतावणे वारो संशयादिकको नाश करणेवारो जो हरिजन सोई दुर्लभ हैं काहेते हरि सर्वत्र रह्यो है सो गुरु शास्त्र मार्ग है सोतो सगरै मिलै अरु हरिको जन है सो हेरचो सगरै कोई मिलै

नहीं कहींकमिलै अरु जहां कहींक ऐसो हरिजन है तहांभी कोयक विरलोही है सबही ऐसे नाहिं जैसे और पशुके मारणेवारे वृकादिक वनमें बहुत हैं परंतु गजके मारणेवारो सिंह कोई विरलोही है ॥ अब इसदोहाको अर्थकोहीं अगले दोहामें बखान करैं हैं ॥ दोहा ॥ नित्य निकट प्रापत सदा, स्वप्रकाश सब ठाम ॥ सुलभ जु सो दुर्लभ भयो, विन बोधक सो राम ॥ २ ॥ ॥ टीका ॥ नारायण सर्व जीवोंको आत्मा है ताते सदा प्राप्त है अरु आम्रादिफलकी प्राप्ति जो है सो जैसे वसंतादिक कालकी अपेक्षा करै है तैसे नारायणकी प्राप्ति कालकी अपेक्षा करै है काहेते नित्य है अरु स्वर्गादिककी प्राप्ति है सो जैसे धूम्रादि मार्गकारिके गमनकी अपेक्षा करै है तैसे नारायणकी प्राप्ति गमनकी अ-

पेक्षा नहीं करै है काहेते स्वस्वरूपत्वकारिकै
बुद्ध्यादिकसूंभी नारायण है सो नजीक है अरु
परिपूर्ण है ॥ पूर्वपक्ष ॥ यद्यपि नित्य निकट
परिपूर्ण नारायण जो है सो सर्व जीवोंके सदा
प्राप्त है तथापि भासै नहीं है ताते नारायणके
प्रकाशके अर्थ आपसूं अतिरिक्त प्रकाशकी अ-
पेक्षा होयगी तहां कहैहैं कि स्वप्रकाश है आप
प्रकाशरूप है ताते आपके प्रकाशनेके अर्थ प्र-
काशांतरकी भीअपेक्षा नहीं करै है जैसे सूर्य है
सो दीपककी अपेक्षा नहीं करै है ऐसो अत्यंत
सुलभ जो राम है सोई ऐसी सुलभताके ज-
णावणेंवारे साधु विना अत्यंत दुर्लभ होय-
रह्यो है जैसे कंठका मणिका कंठके विषेही
फिर रह्यो है कहूं गयो नाहिं है तथापि ऐसे मणि
का दिखावणेवारा पुरुष विना दुर्लभ मानिकै

छातीमाथो कूटै है अरु अनेक यत्न करै है तथा-
पि पावैनहीं है तैसे गुरु विना नारायणकी प्राप्ति
के अनेक यत्न करै है तथापि पावै नहीं है ॥ २ ॥
॥ ॥ दोहा ॥ सर्व देश सब कालमें, सब वस्तु-
नके माहिं ॥ सब पहिले जो भासही, कोयकूं
दुर्लभ नाहिं ॥ ३ ॥ ॥ टीका ॥ जो नारायण
सर्वगत है ताते सर्व देशमें रह्यो है नित्य है तातें
क्षण मुहूर्तादि सर्वकालमें रह्यो है परिपूर्ण है तातें
देहादिक जो अंतरवस्तु अरु घटादिक जो सर्व
बाह्यवस्तु तामें रह्यो है अरु स्वप्रकाशरूप है तातें
बुद्ध्यादिक सर्व वस्तुके पहिले भासैं है अरु बु-
द्ध्यादि विषय पर्यंत सर्व प्रपंच जो है सो जा भा-
सताके पीछे वाहीका प्रकाशकरि भासै है जैसे
प्रकाशमान सूर्यका प्रकाशकरि व्याप्त घट जो है
सो वा प्रकाशके भासे पीछें प्रकाशसूं मिल्यो घ-
टहूँ वा प्रकाशकरि भासै है प्रकाश विना स्वतः

आप भासै नाहिं है तातें प्रपंचहू नारायणका प्रकाशकरिके भासै है स्वतः नाहिं भासै है ऐसो नित्य परिपूर्ण स्वप्रकाशजो नारायण है सो कौंणकूं दुर्लभहै कोयकूंभी दुर्लभ नाहिं तथापि अज्ञान करिकै सर्वत्र भासतोहूं वो न भासतो सारीखो होय रह्यो है ताते ता अज्ञानकूं दूरि करिकै नारायणको यथार्थ बतावणेंवारो साधु है सोई दुर्लभ है ॥ ३ ॥ याही अर्थकूं अन्वय व्यतिरेक करि दिखावें हैं ॥ दोहा ॥ हरिजन दुर्लभताभरी, हरि दुर्लभ जगमाहिं ॥ हरिजन मिलते होत हैं, हरि दुर्ल्लभ सब ठाहिं ॥ ४ ॥ याको अर्थ स्पष्ट है ॥ ॥ दोहा ॥ हरिजन दुर्लभता कही, गोविंदगीता माहिं ॥ कोटिनमें कोय तत्त्ववित, जित तित पावैनाहिं ॥ ५ ॥ टीका ॥ जनकी दुर्लभता हमही कही है नहीं किंतु आप नारायणनें श्रीमुखते गीता-

जीमें भी कही है श्लोक "मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये॥यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः" इति याको अर्थ गधे कुत्तेकी नाई धर्म ज्ञान रहित केवल शिश्नोदरपरायण जोहै सो मनुष्य नाहिं तब मनुष्य कौण तहां कहैंहैं जो धनकमावणेंमें धर्मको नाश न होय ऐसो धन कमायकै कामभोग करै सो विषय भोगहू कैसो जाते परलोकको साधक धर्मको नाश न होय ऐसे तीन पदार्थके साधक जे पुरुष हैं तिनकूं मनुष्य कहिये ऐसे अनेक मनुष्य तिनके मध्ये चतुर्थ पदार्थ मोक्षको यत्न करणेवारो मुमुक्षु कोयक विरलोही है ऐसे मोक्षके यत्न श्रवण मननादिक करणेवारे जे अनेक पुरुष तिनूंके मध्ये परमार्थरूप जैसो मेरो स्वरूप है तैसो असंभावना विपरीत भावनारहित यथार्थ मोकूं जाणनेंवारो तत्त्ववित कोयक विरलोही है याश्लोकके भावकूं दिखावैं

हैं कोटिनमें इति ॥ ५ ॥ जगतमें स्वर्गादि सबही पदार्थ सुगम है दुर्लभ सो एक सतसंगही है ऐसे कहैंहैं ॥ दोहा ॥ देशकाल जन्म कर्म करि' सबसुलभ जगमाहिं॥दुर्लभ महानुभावकी, संगति जित तित नाहिं ॥ ६ ॥ टीका ॥ ॥ अनादिकालको जगत्में भ्रमतो जीव जो है सो कोयक पदार्थकूं देशकरिकै कोयकूं कालकरिकै कोयकूं जन्म करिकै कोयकूं कर्म करिकै पावै है जैसे कल्पवृक्ष अमृतादिककीप्राप्ति हैसो या देशमें दुर्लभ है सोभी स्वर्गादिदेशकरि सुलभ होत है आम्रादि फलकी प्राप्तिहै सो शरदादि ऋतुमें दुर्लभ है सो भी वसंतादि काल करिकै सुलभ होत है ऐसेआकाशगमनादिक है सो मनुष्यादि जन्मम दुर्लभहै सो वी पक्षीकै जन्म करिकै सुलभहोतहै ऐसे स्वर्गादिकका भोग है सो यालोकमें दुर्लभ है प-

रंतु यज्ञादि कर्म करिके सोभी सुलभ होत है ताते जगत्में जीवके कोईभी पदार्थ दुर्लभ नाहिं हैं दुर्लभ एक महानुभावकी संगतिही है सो जहां तहां नहीं मिलै है॥ ६ ॥ पूर्वपक्ष अनादिकालको जगत्में फिरतो जो जीव ताने कहूं सतसंगभी पायोहोयगो ताते सतसंगभी दुर्लभ नांहिं तहां कहै हैं॥ दोहा ॥ स्वर्गादि लोक रु भोग सब, कैइबर भुक्ते जोय ॥ जन्म देखि अनुमानिये, सतसँग मिल्यो न कोय ॥ ७ ॥ टीका ॥ स्वर्गादि सर्व लोक अरु सर्व लोकके भोग सो सबही जीवनै केई बेर भुक्ते हैं इनमें कोयभी अपूर्व है नाहिं अपूर्वतो एक सतसंग ही है कैसे जाणिये तहाँ कहैं हैं कियो जन्म देखिकै सत संगकी अप्राप्तिको अनुमान करिये है जो पीछै जन्मजन्ममें सतपुरुषोंको संग भयो हो तो

यो जन्म होतो नाहिं सो तो यो जन्म भयो है ताते जाणिये है कि पूर्व संतसंग नहीं भयो है ताते एक सतसंगही दुर्लभ है ॥ ७ ॥ अब सतपुरुषकी स्तुतिपूर्वक प्रकरणकूं समाप्त करैं हैं ॥ ॥ दोहा ॥ महानुभावेहूं जो मिलै, वाहूं तन मन प्रान ॥ मेरे शिरको मुकटमनि, उनहीको पदत्रान ॥ ८ ॥ टीका ॥ महानु बडोहै अनुभव महिमा जाको ऐसो जो महानुभाव तापर तन मन प्राण वारि डारिये काहेते वे सर्वथा सेवने लायक हैं वे तो पूजने लायक हो सो होपरंतु उनकी पदत्राण पनही है सो मेरे शिरको भूषणहै ॥ ८ ॥

इति श्रीहरिजनदुर्लभताकथनंनामषष्ठप्रकरणम् ॥ ६ ॥

अब सतपुरुषके अंगको महिमा निरूपण कैरं हैं ॥ दोहा ॥ सहज सजन मुख चंद्रमा, स्रवत

अमृत रस बैन ॥ मृतकजीव तपदुखहरण, सीतल सबसुखदेन ॥ १ ॥ टीका ॥ सतपुरुषोंको वदनरूप चंद्रमा जो है सो स्वभावसूंही चंद्रमाकी नाईं ज्ञान अमृतसूंभरे वचनकूं स्रवै है अब वचनमें अमृतकी साम्यता दिखावैं हैं मृतकेति मृतककी नाईं अनात्मभाव करिकै जड होयरहो जे जीव तिनुंकूं अमृतकी नाईं ब्रह्मभाव करिकै फेर जिवावने वारे ऐसे वे वचन हैं फेर चंद्रमाको अमृत जैसे तापहरके शीतलता करे है तैसे सत पुरुषका वचनभी अज्ञानजनित सर्व दुःखकूं हरै है अरु सर्व जो संपूर्ण सुख ताकूं अभिव्यक्त करै है ताते सतपुरुषोंको वचन अमृत तुल्यहै ॥ १ ॥ फेरहूं सतपुरुषोंके वचनकूं ज्ञानामृतको डकाररूप निरूपण करैहै ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ ज्ञानामृत उदगारजो संतको शास्त्रस्वरूप ॥ गंध कृत्य-

च्छवततताहिमें ॥ भासत राम स्वरूप ॥ २ ॥
॥ टीका ॥ जेताक अध्यात्मशास्त्रहैं वे सब संतनकी ज्ञानामृत तृप्तिका डकारहैं कैसे जाणिये तहां कहैंहैं गंधति जैसे पुरुष कांदा खायाहोवे तो डकारमें कांदाको गंध प्रत्यक्ष भासै अरु जो कपूर खायोहोय तो कपूरको गंध भासेतैसे सतपुरुषांने रामस्वरूपको सम्यक् अनुभव कियोहै ताते उनका वचन में अधिकारीकूं प्रत्यक्ष राम भासै हैं ॥ २ ॥ अब संतोंके वचनकूं रवि किरणकी साम्यता निरूपण करे हैं ॥ दोहा ॥ सहज सँभाषण संतको, अर्थ निर्णैकरिदेत ॥ संशयतम जिज्ञासुको, क्रिनवत ग्रसिलेत ॥ ३ ॥ ॥
॥ टीका ॥ जैसे अँधरी रात्रिके विषे केतेक पदार्थ तम करि आवृत हैं अरु केतक संदिग्ध हैं उन सर्वकूं रविके किरण निकसते थकेहूं तमकूं दूरि करिकै जो संदिग्ध स्थाणु आदिक हैं ताको तो

यो स्थाणुही है ऐसो निर्णय करिदेत हैं अरु आवृत है ताकों प्रकाशकरदेत हैं तैसे सतपुरुषरूप सूर्यके वचनरूप किरण हैं सोभी अज्ञानावृत आत्माको नास्ति न भाति कूटस्थइति ऐसो अनादिकालको असत्त्वापादक आवरण जो है वाकूं नाशकरिकै आत्मा है ऐसें परोक्ष प्रकाशकरै हैं अब शास्त्रका नानाप्रकारका वाद करिकै संदिग्ध जोत्वं पदार्थादिक हैं ताकों तो सत्पुरुषके वचनहैंसोमननादिक युक्तिकरिकै निर्णय करिदेता हैं ऐसे निदिध्यासन साक्षात् कहिके प्रतिपादक वचन करिकै अभानापादक तमकों भी रविकी किरणकी नाईं ग्रसन करै हैं ॥ ३ ॥ अब सत्पुरुषको मेघकी साम्यता निरूपण करै हैं दोय दोहा करिकै ॥ दोहा ॥ जल भल वचनकूं वरषहि, घन सज्जन पर हेत ॥ गलै मिलै अंकुर धरे, ज्यूंका

त्यूंरहखेत ॥ ४ ॥ गलैढीम भेली मिलै, रजअं-
कुर छोर बीज ॥ जल संग पायकै कंकरा, तजै
टेक नहिंनीज ॥ ५ ॥ ॥ टीका ॥ ॥ जैसे पराये
अर्थ मेघ वर्षे है वा वर्षासूं पृथिवीमें बंध्या ढीमा
है वे बी गलिजावैं हैं बिखरी धूल है सो भेली
होत है बीज है सो अंकूरकूं छोडै है जडीहै सो
फेर फूटै है अरु कंकर जो है सो जलको संग
पाय करिकै न गलै है न मिलै है न अंकुरकूं
धरै है अरु न जडीकी नाईं फूटै है जैसो को तैसो
हीरहै है तैसें सज्जन घन है सो भी पराये अर्थ
हित सत्य प्रिय वचनकी वर्षाकरैहैं तावचनकूं सु-
निकै कोयकछेको मन कछू कठोर है सो गलैहै
अरु कोयको मन बाह्य विषयमें विखरचो है सो
भेलो होतहै अरु जो चित्त ज्ञानादिक संस्कार
रूप बीजयुक्त है सो भक्ति ज्ञानादि घन अंकुरकूं

छोडै है अरु जिनके ज्ञानादिघन प्रतिबंध करिकै कुंठित भये हैं सो सत्पुरुषके वचन फेर फूटै हैं अरु अनअधिकारी है सो कंकरकी नाईं ज्योंको त्योंही रहै वे साधुका वचन सुणिके चित्तमैंकछू भीविक्रिया नाहिं होतहै॥ ५ ॥ अब सत्पुरुष वचनको उपदेशकरै सोतो करै परंतु उत्तम अधिकारीकूं तो संतकी स्वाभाविक दशा है सोई उपदेशकहैंहैं ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ सहज दशा जो संतकी, दशादिखावत सोय ॥ शांत चित्तमें हरि प्रकट, शांत करो सबकोय ॥ ६ ॥ ॥ टीका ॥ ॥ संतकी स्वाभाविक शांतमुद्रा जो है सोई जा दिशामैं हरि रहै है ता दिशाकूं सूच वै है जैसे थिरि जलमें प्रतिबिंबकी नाईं स्थिर चित्तमैं हरि अभिव्यक्त रहै है ता स्थिर चित्तसूं देह इंद्रियकी स्थिरताहैं सो सूचवैहै ताते जो कोय हरि दर्शनकूं चा

है तो चित्तकूं स्थिरकरो ऐसे साधूकी मुद्रा है सोई उपदेशकरै है ॥ ६ ॥ अब सज्जनकी दृष्टिको महिमा च्यारि दोहा करिकै कहै हैं ॥ ॥ दोहा ॥
सहज दृष्टि जो संतकी, भरि करुणारस पूर ॥
अनुकूल जनपरझरत है ॥ पाप ताप सब दूर ॥ ७ ॥ ॥ टीका ॥ ॥ जैसे अमृतरससूं भरी करुणा रस पूरचंद्रमाकी किरण जो है सो चकोर पर झरै है काहेते जलता अंगार भखे है तोभी जले नहीं है तैसे करुणारससूं भरी सतपुरुषनकी दृष्टि जो है सोभी अनुकूलजन जोविनयादि युक्त भक्त जन तापर झरै है अरु अज्ञान जनित सर्व पाप अरु पापका किया सर्व ताप तासूं सतपुरुषकी दयादृष्टिही दूरि करैहै ॥ ७ ॥ ॥ सोरठा ॥ ॥
सज्जन कृपा सुदृष्टि, पुष्टि करै शुभ गुणनकी ॥
चंद्र अमृतकी वृष्टि, सब ओषधि पोषणकरै ॥ ८ ॥ टीका ॥ जैसे चंद्रमाकी किरण द्वारा भई

जो अमृतकी वृष्टि सो सब औषधियोंको पोषण करैहै तैसें साधूकी कृपादृष्टिहै सोभी शम दमादि शुभ गुणनकी पुष्टी करैहै ॥ ८ ॥ दोहा ॥ सज्जन कृपा कटाक्षते, प्राकृत सज्जन होय ॥ सज्जनकी सु कृपा विना, सतपथ लहै न कोय ॥ ९ ॥ ॥ टीका ॥ ॥ अति नीच है सोभी महापुरुषकी कृपाहै महापुरुष हो जावै अरु महापुरुषकी कृपा विना अति उत्तमहै सोभी सतपुरुषके मारगकूं न पावैहै ॥९॥ अब याही अर्थकूं दृष्टांतकरि दृढ करैहैं ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ हीनजनम हित कर्म सो, पायक संतसमाज ॥ वालमीकि नारद भये, भवतारक जगइयाज ॥ ॥ १० ॥ ॥ टीका ॥ पूर्व जनममें निकृष्ट भील दासी पुत्रादि जन्म अरु निकृष्टदास्य चौर्यादि कर्म वा करिकै युक्त ऐसे जे वाल्मीकि नारदादिक वेभी

महा पुरुषोंके समाजकूं पायकै महापुरुष भयेहैं सो आपके तिरणेकी तो कहा कहणीं परंतु सर्व जगतके जीवोंके संसार समुद्र तिरणैंकी जहाजरूप भये काहेते वे सर्व जगतके आचार्य भये जिनके किये रामायणादि शास्त्रको आश्रय करिकै सर्व जीव संसार समुद्रकूंतिरैंहैं ॥ १० ॥ अब साधुके करको महिमा कहत हैं ॥ दोहा ॥

साधु जननको कर कमल, धरचो सुजाके माथ ॥
सोई जन या जगतमें, मानिय भयो सनाथ ॥
॥ ११ ॥ टीका ॥ जाके माथे सतपुरुषनको हाथ भयो सोई जगतमें सनाथ नाथ जो स्वामी ईश्वर ताकरि युक्त धणीं याते बडो है महापति जानिये काहेते जाके सामने यमादिकभी देखिनहीं सकैंहैं अरु राजा प्रजा सब हाथ जोरैं हैं और इतर जीव जो हैं सो सब कुत्ता बिलावकी नाईं अनाथ निधणियां हैं जैसे निधणिया वनके पशु हिरण

शशादिक जो हैं वाकूं हर कोई मारो परंतु वाकी बुंम फरियाद नाहि तैसे भगवद्विमुख जीवबी अनादिकालको संसारमें कुटाय है दुःख पावे है परंतु अबतांई वाकी दाद फिरियाद है नाहिं॥ ११॥ अब सतपुरुषके चरणको महिमा कहैं हैं ॥दोहा॥

सब तीरथनित वसतहैं, सज्जनके पद माहिं ॥
पवित्र होत जिहिसेवते, जन बिन तीरथ नाहिं ॥ १२ ॥

॥ टीका ॥ ॥ सत्यपुरुषके चरणमें सर्व तीर्थ रहैं हैं केसे जाणिये तहां कहैं हैं कि सतपुरुषनके भक्त मुमुक्षु जो है सो तीर्थमें स्नान कीया बिनाहू जिनूके चरणनकी सेवासूं ही परमपुनीत होत हैं जो चरणमें तीर्थ न होते तो वे पवित्र कैसें होते अरु पवित्र तो होवे हैं तातें जाणिये जे चरणमें सर्वतीर्थ रहैं हैं ॥ १२ ॥

इति श्रीसंतमहिमकथनं नाम सप्तमं प्रकरणम् ॥ ७ ॥

फेरभीरूपक करिकै सतसंगकी स्तुति करैं हैं ॥ दोहा ॥ सज्जन चंद्र कि चंद्रिका, संगतिशीतल जानि ॥ जन औषधि पोषणकरै, तप तम भ्रमकी हानि ॥ १ ॥ टीका ॥ ॥ सत्पुरुष रूप चंद्रमाकी संगति जो है सोई शीतल चांदनी है क्यूंकि जामें बैठने सूं अज्ञान जनित सर्व ताप दूर होत हैं अरु अंतःकरणमें परमानंदरूप शीतता व्यापै है फेर चंद्रमाकी चांदनीकी नाइभक्तजनरूपऔषधी कूं दिन दिन ज्ञान अमृतकरि पोषणकरे हैं फेर अज्ञानरूप तम अरु ता तमसुं भये जे अहंममतादि भ्रम अरु ता भ्रमसो भये जे अध्यात्मादिक दुःख इन सर्वकी हानि करे हैं तातें सतसंगति है सोई सज्जन चंद्रकी चांदनी है ॥ १ ॥अब गंगाका रूपकरिकै सतसंगतिको निरूपण करे हैं ॥दोहा ॥ सतसंगति शुधि गंगमैं, क्रीडत आठू याम

सो शीतल शुचि होत है, लगै न भवदुख धा-
म ॥ २ ॥ ॥ टीका ॥ ॥ सतसंगति रूप परमपुनी-
त गंगाके विषे जो अधिकारी है सो प्रश्न उत्तर स
द्वचनको श्रवण मनन अनुमोदन रूप क्रीडा आ-
ठू प्रहर करै है सो पुरुष शीतल परम सुखी होत-
है अशुचि अज्ञानादि पूर्व मल रहित होत है अ-
रु नवीन या देहादि करिकै भये वे अंग आत्मा-
के विषेन हीं लगै हैं जैसे गंगामैं क्रीडता पुरुषके
चांडालादिकको अरु धूपको यद्यपि स्पर्श भयो
तौ हूं गंगाके प्रभावसूं पाप तापादि नहीं लगै हैं तै
से सतसंगमैं क्रीडता पुरुषकेहूं सतसंगके प्रभावसूं
ही पाप तपादि नहीं लगें हैं तैसे सतसंगमैं क्रीडता
पुरुषकैहूं सतसंगकै प्रभावसूंही पाप तापादि नहीं
लगै हैं ॥ २ ॥ अब सतसंगको जो प्रभाव सोई दि
खावैं हैं ॥ ॥ दोहा ॥ सतसंगति शुचिगंगके, नि

र्णय शब्द तरंग ॥ सम्यक्ज्ञान प्राप्तकरै, पाप ताप भवभंग ॥ ॥ ३ ॥ ॥ टीका ॥ ॥ मतवादिनके नानाप्रकारके वाद करिकैं संदिग्ध ऐसे जे तत्त्वमादि पदार्थ तिनूंके स्वरूपके निश्चय करावणेवारे जे शब्द हैं वेही सतसंगरूप गंगाके तरंग हैं सो असंभावनाविपरीतभावना रहित यथार्थ तत्त्वज्ञानकूं प्राप्त करैं हैं अरु सम्यक्ज्ञान द्वारा वे शब्द तरंग हैं सोई पाप ताप सहित संसृतिको नाश करत हैं ॥ ३ ॥ ॥ अब सतसंगसूं निरतिशय सुखकी प्राप्ति दिखावैं हैं ॥ दोहा ॥ ॥ जो सुख है सतसंगमैं, सो सुख कहूं बिनाहिं ॥ गर्क होत हैं सुख सबै, सतसंगके सुष माहिं ॥ ४ ॥ टीका ॥ ॥ उत्तम अधिकारीकै सतपुरुषोंके संगमैं जो परमानंद सुखकी प्राप्ति होत है सो सुछेख स्वर्गादि सर्वलो-

कर्मै है नाहिं काहेतैं सतसंगसूं अभिव्यक्त भयो जो ब्रह्मानंद तामें सर्व क्षुद्रानंद गर्क होत हैं जैसे सर्व नदीयोंसंयुक्त गंगाछेको जल समुद्रमें गर्क होत है ॥ ४ ॥ ॥ अब ग्रंथकी समाप्ति करैं हैं ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ सतसंगतिके फलविषे, नहिं संशय परसंग ॥ जो हुयतो अधिकारिह्वै, करि देखहु सतसंग ॥ ५ ॥ ॥ टीका ॥ सतसंगको कह्यो जो फल सो शास्त्र युक्ति अरु अधिकारीको जो अनुभव ताकरिके सिद्ध है यामें संशयकी प्राप्ति है नांहि अरु जो कोईकूं संशय होय तो जैसे करके कंकणकूं आरसी नहीं चाहिये काहेते प्रत्यक्ष है तैसे सतसंगको फलबी प्रत्यक्षहै ताते अधिकारी होयकें सतसंगकी परीक्षा करि देखो फल होय है कै नाहिं ऐसे जो सतसंग करैगो तो जैसे अग्निके संगसूं शीतनिवृत्ति अरु प्रकाश-

की प्राप्तिकी नाईं सतसंगसू बी भक्ति वैराग्या-
दि फलकी प्राप्ति अवस्यहोवेहै ॥ ५ ॥ ॥ दोहा ॥
रामचंद्र पद वंदिकै, मागत मानकदास ॥
राम सदा मोहिंदीजिये, सतसंगतिमें वास ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीसंतप्रभावग्रंथ संपूर्ण ॥

चौपाई ॥ संतप्रभावग्रंथयहगायो । अद्भुत पंथमुक्तिकोबतायो ॥ श्रवणमननवाकरेनरकोई । सेजपरमपदपावहिसोई ॥ १ ॥ संतशिरोमणियाके कर्ता । मानकदासनामगुरुधर्ता ॥ ज्ञानवैरागउतम-गुनधारि ॥ बडेउपरामसत्वहिविचारि ॥ २ ॥ राघवानंदस्वामियुगावे । देखिग्रंथबहुमनललचावे ॥

॥ इति ॥

॥ श्रीः ॥

अथ श्रीकविगिरिधरजीकृत–

कुंडलिया प्रारंभ ।

वाणीमात्र जगत सब, चिद् बितरेक न रंच ॥ ज्यों मृद्सत्य घट मिथ्यया त्यों कलत्र परपंच ॥ त्यों कलत्र परपंच तंतुमे जैसे बस्तर ॥ कनकमाहिं आभरन लोहमें जैसे शस्तर ॥ कहगिरिधरकविराय द्वैतकीधूरिउडानी ॥ मनकी जहां न गम्य विषयकरि सकै न बानी ॥ १ ॥ वानी विषय न करिसकै, मनकी जहां न गम्य ॥ सोपरमेश्वरब्रह्महै ऐसोलियोमरम्य ॥ ऐसो लियो मरम्य अपनपौआपनिहारयो ॥ मोहसंशयविप्रीत भ्रांतिकोमूलउखारयो ॥ कहगिरिधरकवि-

राय विलोवोकाहेपानी मनकीजहांनगम्य वि-
षय करिसके न वानी ॥ २ ॥ आत्मभिन्न जो
जो क्रिया सो सो भ्रमके मूल ॥ काय वाचक मा-
नसी ॥ सबी आपनी भूल ॥ सबी आपनी भूल
मोक्षहित करे जो करनी ॥ ज्यों रवि चाहै तेज
जाय खद्योतकि शरनी ॥ कहगिरिधरकविपुरुष
साध्यसोसभी अनातम ॥ स्वतःसिद्ध अपवर्ग-
रूप चिदघनतूंआतम ॥ ३ ॥ खल साजन दो
जगतमैं, तिनकी है यहरीति ॥ ज्यों सूचीको अ-
ग्रभाग, पृष्ठभागहै मीत ॥ पृष्ठभाग है मीत
एकतो छिदर करि है ॥ दूसरतिसे आछादत ॥
ततक्षण गुणकरिभारि है ॥ कह गिरिधरकविरा-
य आतमाएकअमल ॥ निजमायाकरिब-
नरह्यो सोईसाजनखल ॥ ४ ॥ चिदविलासप्रपं-
च यह चिदविवरतचिदरूप ॥ ऐसीजाकूंदृष्टि है

सो विद्वानअनूप ॥ सोविद्वानअनूप महाज्ञानी तत्त्वदरसी ॥ निजआतमबितरेक वारतासुनेनकरसी ॥ कहगिरिधरकविराय ॥ विवेकीत्यागैंजिद ॥ किनसँगकरैविवाद ॥ वादजो है इकचिद ॥ ५ ॥ रामतुहीं तुहिकृष्ण है ॥ तुहिदेवनकोदेव ॥ तुहिब्रह्माशिवशक्तितूं ॥ तुहिसेवकतुहिसेव॥तुहीइँदरतुहिशेषा ॥ तुहीं होय सबरूप ॥ कियो सबमें परवेषा ॥ कहगिरिधर कविराय ॥ पुरुष तुंहितुँहि वाम तुँहि लछमन तुंहि भरत ॥ शत्रुघन सीताराम ॥ ६ ॥ बेडा तूं दरियावतूं तुहीवार तुहिपार ॥ तुहीतरावे तरे तू तुहीमघडूबनहार ॥ तुहिमघडूबनहार सर्वलीला है तेरी ॥ तुंहि घंटा तुहिशंख ॥ तुहीरणसिंगाभेरी ॥ कह गिरिधरकविराय तुहीबस्ती तुहिखेडा ॥ तुहीनावक तुहिनीर ॥ तुंहीपतवारी वेडा ॥ ७ ॥

भूल्यो जब तूँ आपकूं ॥ तवही भयो खराब ॥
रेरेकाअस्पँदभयो ॥ उतर गईसबआब ॥ उतर-
गई सब आब दरोदरखावेधक्के ॥ धावैकभी क-
द्वार ॥ षंडपुनजावैमक्के ॥ कहगिरिधरकविरा-
य ॥ कुफरकेपलनेझूल्यो ॥ बकने लग्यौ तुफान
चमा सबअपनी भूल्यो ॥ ८ ॥ कोप करै जिस
शकस पर ॥ परमेश्वर जब आप ॥ चाहै दिन-
अरुराति तब ॥ लोकन साथ मिलाप ॥ पुनि
वांसना उपजै खोटी ॥ कृपाणताकेलिये बुद्धि
होजावै मोटी ॥ कह गिरिधर कविराय ॥ आ-
पनो करिके लोप ॥ अनात्म चिंतन करै ॥ यहि
ईश्वरकोप ॥ ९ ॥ करे कृपा जिस पुरुष पर ॥
अतिशैकरिकैराम ॥ ताकूंकोई ना फुरे लौकिक
वैदिक काम ॥ लौकिक वैदिक काम रहै नहिं
करनो बाकी ॥ हरजगा हर बखत ब्रह्मकी होवै

झाकी ॥ कह गिरिधर कविराय॥ अविद्या जिसकी मरै ॥ सर्वक्रियाके माही एक खुद दरशनकरै ॥ १० ॥ भाग सर्वत्रफलत हैं ॥ नचविद्या पौरुष सरल ॥ हरि हरमिल सागर मथ्यो ॥ हरकूं मिल्यो गरल हरिने लक्षमिपाई ॥ षट भग दोऊ संपन्न ॥ भागकी कही नजाई ॥ कह गिरिधर कविराय कोऊ मिल खेलैंफाग ॥ कोऊ हमेंसा रोवै ॥ आपो अपनेभाग ॥ ११ ॥ दैवनाम है भागका ॥ सो है जिसका सूर ॥ ताकी हानीकरनकूं है किसकामक दूर ॥ है किसकामक दूर ॥ आप बिधि विष्णु महेशू ॥ वाकी रक्षाकरे भवानी सहितगनेशू ॥ कह गिरिधर कविराय भैरवी साकती शैव ॥ इक रोम न सकै उखार ॥ दाहने जबतक दैव॥ १२ ॥ दैव अधीन व्यवहार सब, अन्य अधीन न वीर ॥ अ-

न्य अधीन जु होय कछु ॥ कोइ पीवन देत न नी-
र ॥ कोइपीवन देत न नीर तोयमैं देत न न्हावन
॥ पावक देत न तपन ॥ पवनपुन देत न खाव
न ॥ कहगिरिधर कविराय ॥ आतमा इक निर
वैव ॥ उभय अविद्या सहित ॥ अरोपतजिस
में दैव ॥ १३ ॥ अदृष्ट समान बलिष्ठ नहिं,देख्यो
जगमै मीत ॥ करैभगोडा सुरकूं पुनकायरकी
जीत ॥ पुनि कायरकी जीत ॥ धनीकूं कर है
कंगला ॥ निरधनकूं करै धनी ॥ सहर कारि डारै
जंगला ॥ कहगिरिधर कविराय ॥ इष्टकूं करै अ-
निष्ट ॥ पुनि अनिष्टकूं इष्ट सो ऐसो कौन अदृ-
ष्ट ॥ १४ ॥ अवश्यमेव भुक्तव्य है ॥ कृत कर्म
शुभाशुभजोय ॥ ज्ञानी हँसकरि भोग है ॥ अ-
ज्ञानी भोगै रोय ॥ अज्ञानी भोगै रोय ॥ पुन
पुनमस्तक कूटै ॥ प्रारब्धजो होय विनाभोगै नहीं

छूटै ॥ कहगिरिधर कविराय॥ नदीरघ होतरहस्य ॥ जैसैजैसैभाग पुरुषके फलै अवश्य ॥ १८॥ थोरे-दिनके कारने॥ कवन उपाधिकरै ॥ किस जीवनके वासते ॥ जगमें पचि पचि मरै ॥ जगमेंपचि पचि मरै ॥ अपनी लज्जत खोवै ॥ एक गमावै हुरमत दुतिय फजीहत होवै॥कह गिरिधर कवि-राय ॥ जुजीवन मुक्तिलोरै॥तजै सर्वका संग जान-रहना दिन थोरे॥१६॥ देखिदेखिगुन जनोंके ॥ मनमें उपजी शांत ॥ मिलवेको चित ना चहै ॥ किंतु मिट गई भ्रांति ॥ किंतु मिट गई भ्रांति ॥ साथ सबगये संदेह ॥ किन संग करियेवैर ॥ कौनसंग लाइये नेंह ॥ कह गिरिधर कविराय॥ वहमकी रही न रेख ॥ज्यौंकी त्यौं जब बस्तु यथा रथ लीनी देख ॥१७॥ जो संग आश्रम वरनके॥ नाजातिनके कोल ॥जामेतो मत बैठतिहँ॥ बैठे

तोमत बोल बैठे तो मत बोल बोलै तो छोरे विखेरो ॥ वहि पूछैं कछु व्यवहार ॥ थोरेमें करो निवेरो ॥ ॥ कहगिरिधर कविराय ॥ कहेमततिनके लगजो ॥ नाजातिनके कोल ॥ वर्णआश्रमके सँगजो ॥ १८ ॥ कूकर पागल कटै जिस ॥ वह पागल होयतात ॥ त्यों नरमजवी संगतै नरम जवी होजात ॥ नरमजवी होजात ॥ बात हिरदे धारि लीजै ॥ प्राणजायतुजाय ॥ मजवीका संग न कीजै ॥ कह गिरिधरकविराय ॥ अधमहै सबसे शूकर ॥ ताते बीसो अधम ॥ मजवका जोजो कूकर ॥ १९ ॥ पासीजबलग मजवकी ॥ तबलग होत न ज्ञान ॥ मजव पासिटूटै जबै ॥ तब पावै पद निरबान ॥ तबपावै पदनिरबान निरंजन माहि समावै ॥ जनम मरन भवचक्र विषे ॥ फिरियोनीन आवै ॥ कहगिरिधरकविराय ॥बोधबिन:भ्रमैं चौ-

रासी ॥ तब लगहोत न ज्ञान ॥ मजवकीजबलग पासी ॥ २० ॥ गडै अविद्याने रचे ॥ हाथी हुब अनंत ॥ जोऊ गिरयोजिस खातमैं ॥ धसगयो कान प्रयंत ॥ धसगयो कान प्रयंत ॥ आपकूं सुने न देखै ॥ बहरा अँधरा भयो ॥ दशोंदिशतम इक पेखै ॥ कहगिरिधर कविराय ॥ यद्यपि शास्तर स्मृति पढै ॥ तिसी तिसीमें मगन ॥ गिरयो है जिस जिसगडै ॥ २१ ॥ जानीरे मन चंचला, सब तेरी करतूत ॥ तूम खौलसैंन टरै घसे ऊतके ऊत ॥ घसे ऊतके ऊत वडोतूं है परपंची ॥ कत रव्योंता तूकरै सर्वथा विन गजकंची ॥ कह गिरिधर कविराय क्षणकमें होवै ध्यानी ॥ क्षणमें रचै धमाल रीति तेरी सब जानी ॥ २२ ॥ जैसा यह मन भूत है, और न दुतिय वताल ॥ क्षणमें चढै आकासकूं, क्षणमें धसै पताल ॥ क्षणमें धसै

पताल होत क्षणमें कम जादा ॥ क्षणमें शहर निवास ॥ करै क्षणवनका रादा ॥ कह गिरिधर विन ज्ञान चित्त थिर होत न ऐसा ॥ गुरू अनु- ग्रह विना बोध दृढ होत न जैसा ॥ २३ ॥ दूजी चरचा नाकरै, विना एक धिष्ठान ॥ नीम पातकूं ना चितै, चाख्योजिन मिष्ठान ॥ चाख्योजिन मिष्टान ॥ न खावै कटू तुरैया ॥ अमृत भक्षण- कर उदगारन लेत मुरैया ॥ कह गिरिधरकवि देह अभिमानी पाजीमुजी ॥ आतमविद्या छोर रागनी गावै दूजी ॥ २४ ॥ कीजै ऐसी कथामत, निस्फल कथनी जोय ॥ सिद्धन जिसमें अर्थकी, नहिं परमारथकीवोय ॥ नहिं परमार- थकी वोय ॥ वारता सो सब तजिये ॥ राम कृष्णनारायण गोविंद हारि हर भजिये ॥ कह गिरिधर कविराय सुधा अनुभव रस पीजे ॥

आतम अनुसंधान होय सोइ चरचाकीजै॥ २५॥
हानी नाहित तज्ञकी, होवत अनू समान ॥ चौ-
रासी लख जीवमिल, जे कर बकैं तुफान ॥ जेक-
रबकैंतुफान नबलकछु पाछैराखैं ॥ जोजोकहनो-
नांहि सोइ सोइ पुनिपुनिभाषैं ॥ कह गिरिधर-
कवि तपै भानु अरु बरषै पानी ॥ चलै पवन-
अत्यंत व्योमकी यथा नहानी ॥ २६ ॥ घाटो
बाधो ना रह्यो, गई जीत पुनि हार ॥ विधि
निषेध युग न दीसैं हुयेपहरकर पार॥ हुये पहर
करपार जगत महासिंधु अनादी ॥ भेद पोटके
सहित जहाँ डूबे प्रतिवादी ॥ कह गिरिधर क-
विराय द्वैतको दफतर फाटो ॥ स्वरूपज्ञानके
भये किसी पर कार न घाटो ॥ २७ ॥ अंधरी
पीसे पीसना, कूकर धसधस खात तैसें मूरख
जनोंका, धन अहमक लैजात ॥ धन अहमक

लैजात संच करि वहभी मरहैं ॥ ताकें पाछे और कुबुद्धीदावा करि हैं ॥ कह गिरिधर कविराय भई इसविधिकी गंधरी ॥ लग्यो श्वानको दाव पीसना पीसैं अँधरी ॥ २८ ॥ खाया जाय जो खा हरे, दिया जाय सो देह ॥ इनदोनूंसे जो बचै; सो तुम जानो खेह ॥ सो तुम जानो खेह ॥ किसी पुनि काम नआवे ॥ सर्वशोक को बीज ॥ पुनः पुनि तुझे हआवे ॥ कह गिरिधरकविराय चरणत्रैधनके गायो ॥ दान भोग बिननाश होत जो दियो नखायो ॥ २९ ॥ तपकरवेकूं नर्मदा, मरवेकूं सुरधुनी॥भजन करनकूं हरीहर भाषैं ऋषि वर मुनी ॥ भाषैं ऋषिवर मुनिवशिष्ठपराशर व्यास ॥ दान करै कुरुक्षेत्र ज्ञान साधन सँन्यास ॥ कह गिरिधर कविराय शिवोहं शिवोहं जप ॥ करण ग्रामकूं रोक न यासम है कोईतप ॥ ३० ॥ गपौडा भाषाका

कोई, संस्कृतका कोय॥कोइगपौडा पारसी अँग-
रेजी·पुनिहोय, अँग्ररेजी पुनि होय गपौडा कोई
अरबी ॥ ब्रह्मज्ञान बिन विद्या सब ज्यों पाकमें
दरवी ॥ कह गिरिधर कविराय वेगी समझो कोइ
पौडा ॥ जाकरि आतम लभै भला है सोइ गपौ-
डा ॥ ३१ ॥ भाषा भूसा फेककै, सडी संस्कृत
डार॥ उभय अरोपत जिसविषे, सोहं चिद निर-
धार॥ सोहं चिद निरधार त्याग सगरी शिर-
दरदी ॥ परको किस्सो छोर खबरले अपने घरदी
॥ कहगिरिधर कविराय वेदको समझो आसा ॥
तुझमें युग अध्यस्त, देवबानी नरभाषा ॥

॥ कविगिरिधरजीकी कुंडलिया ३२ समाप्त ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस–बंबई.

जाहिरात ।

क्रय्यपुस्तकें (भाषाग्रंथाः ।)

नाम. कीं. रु. [illegible]

ब्रह्मज्ञानदर्पण–नामहीसे अर्थ ज्ञात होताहै... ०–[illegible]

ज्ञानस्वरोदय भाषा–(चरणदासकृत)
प्रश्नज्ञानमें तात्कालिक है ०–२

श्रीब्रह्मज्ञानसागर " ०–२

[illegible]क्तिज्ञानानन्दामृतवर्षिणी– राधाकृष्ण-
[illegible] नाममाहात्म्य भक्तिज्ञान प्रेमका उपदेश... ०–२

गुरु[illegible]ीता–गुरुपूजापद्धति भाषाटीकासमेत
([illegible]निगमानिगममंडली)... ... ... ०–४

गुरुमहिमा और गुरु अष्टक–दोहा चौपा-
ईमें गुरूपदेशकेलिये उत्तमहै ०–१